बिहारी :
व्यक्तित्व एवं
जीवन-दर्शन

लशिंग हाउस · दिल्ली

बिहारी : व्यक्तित्व एवं जीवन-दर्शन

रमेशचन्द्र एम० ए०

नेशनल पब्लिशिंग हाउस
२१, दरियागंज, दिल्ली-११०००६
द्वारा प्रकाशित

प्रथम संस्करण १९७४

: मूल्य १५.००

आगरा फाइन आर्ट प्रेस
राजा मण्डी, आगरा-२
द्वारा मुद्रित

Bihari :
Vyaktitva Evam Jivan Darshan
(Criticism)
Ramesh Chandra M. A.

समर्पित

पूज्य चाचाजी श्री प्रकाशचन्द्र गुप्त

F. A. & C. A. O. Central Railway

एवं

चाचीजी डा० उषा गुप्त को

जिनका

असीम स्नेह

मुझे प्राप्त है।

—रमेशचन्द्र

भूमिका

बिहारी हिन्दी साहित्य के जाज्वल्यमान नक्षत्र हैं। उनकी सतसई अथाह समुद्र के समान है। अन्वेषक लोग समय-समय पर गोते लगाकर उसमे से बहु मूल्य पदार्थों को प्रकाश में लाते रहे हैं। किसी ने बिहारी की गहरी अर्थप्रवणता को पहचाना; किसी ने उनकी कल्पना की समाहार शक्ति के दर्शन किये; उन्हें शब्दों का जादूगर माना; किसी को उनके 'दोहरे' नाविक के तीर-सरीखे दिखाई दिये। किसी विद्वान ने बिहारी को श्रेष्ठ मुक्तककार मानते हुए उनमें अर्थ-गाम्भीर्य, शब्दचयन, संक्षिप्तता, सरसता, प्रवाह आदि का अद्भुत सामजस्य देखा। किसी को बिहारी का अनुभाव-विधान अद्वितीय लगा और वह दाद दिये बिना न रह सका।

बिहारी श्रेष्ठ शृंगारी कवि है और उनके दोहों मे नायिका, विशेप रूप से परकीया के प्रसग को अधिक महत्त्व दिया गया है। इस क्षेत्र मे कोई कवि उनकी बराबरी नही कर सका। बिहारी बड़े प्रभावशाली कवि हैं क्योंकि उनका शिल्प-सौन्दर्य भी अनूठा है। ब्रजभाषा का अत्यन्त परिमार्जित रूप यहां दिखाई देता है। शब्दों का उपयुक्त-चयन, पदविन्यास की कुशलता, नाद-योजना की सफलता ध्वन्यात्मकता आदि देखने योग्य हैं।

अब तक विभिन्न विद्वानों और साहित्य-मर्मज्ञों ने कविवर बिहारी के साहित्य को अपने-अपने ढग से पहचानने का प्रयत्न किया है, बिहारी पर लिखित विभिन्न पुस्तकें, टीका-टिप्पणियां आदि उनके अत्यन्त लोकप्रिय होने का सबल प्रमाण हैं। विद्वानो ने बिहारी के व्यक्तित्व एवं जीवन दर्शन पर अपेक्षित गम्भीरता पूर्वक विचार नही किया। इस अभाव की पूर्ति श्री रमेशचन्द्र गुप्त ने की है। उनकी पुस्तक *'बिहारी : व्यक्तित्व और जीवन-दर्शन'* बिहारी के अध्ययन में बडी सहायक सिद्ध होगी। पुस्तक मे से गुजरने पर लगता है कि श्री गुप्त ने बड़ी साधना की है और अपने अध्यवसाय से पुस्तक को अत्यन्त प्रामाणिक बनाया है। प्रबल तर्कों द्वारा अपने विचारों को पुष्ट किया गया है। यह पुस्तक साहित्य के, विशेप रूप से, एम. ए. के विद्यार्थियो के लिए बड़ी उपयोगी सिद्ध होगी। ऐसी सुन्दर एवं उपयोगी पुस्तक लिखने के लिए मैं श्री रमेश चन्द्र को हार्दिक बधाई देता हूँ।

20.6.1974 **—(डॉ०) हेमराज निर्मम**

प्राक्कथन

प्रस्तुत शोध-निबन्ध की रचना मूलतः एम० ए० हिन्दी द्वितीय खण्ड के चतुर्थ पत्र (निबन्ध) के विकल्प रूप में हुई थी। जैसा कि इसके शीर्षक से स्पष्ट है इसमें मुख्यतः 'बिहारी-सतसई' के आधार पर बिहारी के व्यक्तित्व और जीवन-दर्शन का अध्ययन एवं विश्लेषण प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। हिन्दी आलोचना और अनुसन्धान के क्षेत्र में बिहारी पर पर्याप्त कार्य हो चुका है। सच कहें तो आधुनिक हिन्दी आलोचना का श्री गणेश ही बिहारी की महत्ता के प्रश्न को लेकर हुआ। प्रारम्भ में जब मिश्र बन्धुओं ने अपने हिन्दी नवरत्न में बिहारी को देव से निम्न स्थान प्रदान किया तो इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप हिन्दी आलोचना के क्षेत्र में एक तीव्र विवाद छिड़ गया जिसके फलस्वरूप श्री पद्म-सिंह शर्मा, लाला भगवान दीन, कृष्ण बिहारी मिश्र, प्रभृति विद्वानों द्वारा बिहारी पर अनेक आलोचनात्मक पुस्तकें लिखी गईं, जिनमें बिहारी और देव की तुलना प्रस्तुत करने की चेष्टा की गई। आगे चलकर पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र द्वारा बिहारी पर दो महत्वपूर्ण पुस्तकें—'बिहारी की वाग्विभूति' और 'बिहारी' प्रकाशित हुई जिनमें बिहारी-काव्य की समीक्षा सतुलित रूप में प्रस्तुत की गई है। इनके अतिरिक्त बाबू जगन्नाथ दास रत्नाकर ने अपने 'कविवर बिहारी' में बिहारी के जीवन-चरित और काव्य पर अत्यन्त परिश्रमपूर्वक कार्य किया है। बिहारी पर लिखे गये शोध-प्रबन्धों में 'हिन्दी काव्य में शृंगार परम्परा और महाकवि बिहारी, (डा० गणपति चन्द्र गुप्त), 'मुक्तक काव्य परम्परा और बिहारी' (डा० राम-सागर त्रिपाठी), 'कविवर बिहारी लाल और उनका युग' (डा० रणधीर सिन्हा) आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। बिहारी पर लिखी गई अन्य समीक्षात्मक पुस्तकों में डा० बच्चन सिंह की 'बिहारी का नया मूल्यांकन', डा० हरवंशलाल शर्मा की 'बिहारी और उनका काव्य' तथा डा० गणपति चन्द्र गुप्त की 'बिहारी सतसई : वैज्ञानिक समीक्षा' उल्लेखनीय हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि बिहारी के काव्य पर विभिन्न दृष्टियों से पर्याप्त कार्य हो चुका है किन्तु फिर भी किसी में बिहारी के व्यक्तित्व एवं जीवन-दर्शन

पर यथोचित रूप में विचार नहीं किया गया है। किसी-किसी पुस्तक में विहारी के व्यक्तित्व को लिया भी गया है तो मात्र काम चलाने के लिए। प्रायः विद्वानों ने स्वनिर्मित धारणाओं के आधार पर ही विहारी के व्यक्तित्व को देखा है। स्वयं बिहारी के काव्य के आधार पर शुद्ध वैज्ञानिक पद्धति से विहारी के व्यक्तित्व को परखने का प्रयास बहुत कम हुआ है अतः इसी अभाव की पूर्ति का प्रयास प्रस्तुत शोध-निवन्ध में किया गया है। इसमें व्यक्तित्व के विश्लेषण के लिए आधुनिक मनोविज्ञान और मनोविश्लेषण का आधार बनाया गया है।

पूरा शोध निवन्ध नौ अध्यायों में विभक्त है। प्रथम अध्याय में विहारी के जीवन चरित एवं उनके काव्य का सामान्य परिचय प्रस्तुत किया गया है। विहारी का नाम विहारी दास है या विहारी लाल तथा उनके पिता प्रसिद्ध कवि केशव दास थे या कोई अन्य केशव दास?—इन प्रश्नों को लेकर पर्याप्त विवाद हुआ है। हमने भी इन पर पुनर्विचार करते हुए अपना निर्णय देने की चेष्टा की है। जैसा कि प्रस्तुत प्रमाणों से सिद्ध होता है विहारी का वास्तविक नाम विहारी दास ही था जबकि विहारी लाल सतसईकार विहारीदास के लगभग सौ वर्ष बाद हुए थे तथा उन्होंने सतसई की टीका लिखी थी किन्तु भ्रान्तिवश आगे चलकर बिहारीदास और विहारीलाल को एक ही मान लिया गया। इसी प्रकार यह भी पुष्ट प्रमाणों के आधार पर कहा जा सकता है कि विहारी प्रसिद्ध कवि केशव के पुत्र थे। इस बात की पुष्टि दोनों के वंश-वृक्ष, कुल परिवार, जन्म-स्थान, निवास स्थान, जन्मकाल, गुरु आदि अनेक प्रमाणों से होती है। अतः हमने अपना निर्णय इसी मत के पक्ष में दिया है।

द्वितीय अध्याय में आधुनिक मनोविज्ञान के आधार पर व्यक्तित्व का अर्थ और स्वरूप स्पष्ट करते हुए उसके चार पक्ष निर्धारित किए गये हैं—(१) शारीरिक पक्ष, (२) बौद्धिक पक्ष, (३) भावात्मक पक्ष और (४) चारित्रिक पक्ष। इन पर विस्तार से विचार करते हुए अन्त में व्यक्तित्व और साहित्य के पारस्परिक सम्बन्ध को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है।

तृतीय अध्याय में विहारी के व्यक्तित्व के बौद्धिक पक्ष पर विचार करते हुए उनकी कल्पना-शक्ति, स्मरण-शक्ति, तर्क-शक्ति, ज्ञान-शक्ति, ग्रहण-शक्ति आदि पर क्रमशः विचार किया गया है। इससे स्पष्ट है कि विहारी की कल्पना-शक्ति अत्यधिक विकसित थी। साथ ही उनकी तर्क-शक्ति और ग्रहण-शक्ति भी अत्यन्त सशक्त थी। विहारी-सतसई में धर्म, दर्शन, राजनीति, ज्योतिष, आयुर्वेद, कामशास्त्र, युद्ध-विद्या आदि से सम्बन्धित विभिन्न तथ्यों का निरूपण हुआ है जिससे प्रमाणित होता है कि विहारी की ज्ञान-शक्ति भी बहुत बढ़ी-चढ़ी थी।

चतुर्थ अध्याय में बिहारी के व्यक्तित्व के भावात्मक पक्ष पर विचार किया गया है। आधुनिक मनोविज्ञान के अनुसार व्यक्ति के समस्त भावात्मक जीवन के मूल में उसकी सहज प्रवृत्तियां (Instincts) कार्य करती हैं। मैकडूगल महोदय ने इन प्रवृत्तियों की संख्या चौदह निर्धारित की है। वैसे तो ये सभी प्रवृत्तियां किसी-न-किसी रूप में प्रत्येक व्यक्ति में विद्यमान रहती हैं, किन्तु किसी में किसी प्रवृत्ति की प्रमुखता होती है और किसी में किसी अन्य की। बिहारी सतसई के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि बिहारी में तीन प्रवृत्तियों की प्रमुखता थी—(१) काम, (२) आत्म-दैन्य या भक्ति, (३) हास्य और व्यंग्य। इन तीनों प्रवृत्तियों में भी काम प्रवृत्ति सर्वाधिक थी।

पंचम अध्याय में बिहारी के व्यक्तित्व के चारित्रिक पक्ष को लेते हुए क्रमशः बिहारी की प्रकृति, उनके स्वभाव, चारित्रिक गुणों, रुचि एवं शौक आदि पर विचार किया गया है। इस अध्याय के निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि बिहारी गम्भीर एवं शान्त प्रकृति के तथा प्रफुल्ल स्वभाव के व्यक्ति थे। उनमें उदारता, विनम्रता, सहिष्णुता, निष्कपटता, स्पष्टवादिता स्वाभिमानिता और विनोदप्रियता के गुण मिलते हैं। वे नागरिक रुचि के व्यक्ति थे तथा त्यौहारों और उत्सवों में उनकी गहरी रुचि थी। पतंगबाजी, मद्यपान, तम्बाकू पीना आदि उनके प्रिय शौक थे। यह भी कहा जा सकता कि ये शौक उनके व्यक्तिगत न होकर उस युग के रसिक लोगों के प्रिय शौक थे।

षष्ठ अध्याय में बिहारी के व्यक्तित्व का प्रकार (type) या प्ररूप निश्चित करने का प्रयास किया गया है। वैसे तो मनोविज्ञान के क्षेत्र में व्यक्तित्व का वर्गीकरण विभिन्न प्रकार से किया गया है किन्तु हमने यहाँ मुख्यतः युंग के वर्गीकरण को आधार रूप में ग्रहण किया है। हमारे विश्लेषण के अनुसार बिहारी का व्यक्तित्व बहिर्मुखी था, जिसमें तर्क और भावना का उचित समन्वय होते हुए भी कल्पना की प्रमुखता थी। इसलिए हमने युंग की शब्दावली में किंचित् परिवर्तन करते हुए बिहारी के व्यक्तित्व को 'बहिर्मुखी कल्पनाशील' कहा है। बिहारी का व्यक्तित्व संगठित था या विघटित ?—इस प्रश्न पर हमने संक्षेप में विचार करते हुए यह निष्कर्ष प्रस्तुत किया है कि उनका व्यक्तित्व संगठित था। उनकी पत्नी की मृत्यु से अवश्य उनके व्यक्तित्व को ठेस लगी, किन्तु इससे वे बिखरे नहीं अपितु उनके जीवन की दिशा बदल गई। जहाँ पहले उनकी दृष्टि शृंगार पर केन्द्रित थी वहाँ वे उसके बाद भक्ति की ओर उन्मुख हो गए। फ्रायड की शब्दावली में कहा जा सकता है कि इस प्रकार बिहारी अपनी भावनाओं के उदात्तीकरण में सफल हो गए।

सप्तम अध्याय में जीवन-दर्शन का सामान्य विवेचन प्रस्तुत करते हुए जीवन-

उनका दृष्टिकोण यथार्थपरक, भोगपरक, लोकरुचिपरक एवं रीति परक था।

नवम अध्याय में उपसंहार के अन्तर्गत पूर्ववर्ती अध्यायो में उपलब्ध निष्कर्षों को संक्षिप्त एवं समन्वित रूप में प्रस्तुत करते हुए यह स्पष्ट किया गया है कि बिहारी का व्यक्तित्व एवं जीवन-दर्शन एक मध्यकालीन दरबारी कवि के अनुरूप था। वे जिस युग मे हुए उसमे न तो घोर आदर्शवादिता ही सम्भव थी और न ही पूर्ण स्वच्छन्दवादिता। वे परम्परा और लोकरुचि का ध्यान रखते हुए मध्य-मार्ग पर चलनेवाले समन्वयवादी या संग्रहवादी अथवा समझौतावादी कवि थे, जिन्हें दूसरे शब्दो मे 'यथार्थवादी' भी कहा जा सकता है।

अन्त में मैं उन सभी विद्वानो एवं लेखको के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ जिनकी रचनाओं से मैंने सहायता ली है। साथ ही मैं अपने निर्देशक श्रद्धेय डा० राजदेव सिंह, एम० ए०, पी० एच-डी०, डी० लिट्० का भी आभारी हूँ जिनके विद्वतापूर्ण पथ-प्रदर्शन एवं कुशल निर्देशन में प्रस्तुत शोध-निबन्ध की रचना हुई है। इसके अतिरिक्त मेरे पूज्य पिताजी डा० गणपति चन्द्र गुप्त ने भी समय-समय पर अनेक महत्त्वपूर्ण सुझाव देकर मेरे मार्ग की कठिनाइयों को दूर किया है। मैं नही जानता कि उनका आभार किन शब्दों में व्यक्त करू ? अन्त में मैं अपनी यह प्रथम कृति अत्यन्त सकोच एवं विनम्रता के साथ विद्वानों की सेवा में समर्पित करता हूँ।

४, यूनिवर्सिटी-कैम्पस,
रोहतक।
१-६-१९७४

—रमेशचन्द्र

अनुक्रमणिका

सामान्य परिचय

व्यक्तित्व

जीवन-दर्शन

"……किसी भी काव्य रचना के सम्यक विश्लेषण के लिए कवि के व्यक्तित्व का अध्ययन आवश्यक होता है तथा व्यक्तित्व सम्बन्धी तथ्यों की जानकारी के लिए उसके जीवन-चरित को खोजना पड़ता है।"

—डा० गणपतिचन्द्र गुप्त

सामान्य-परिचय

१ | बिहारी और उनकी सतसई : सामान्य परिचय

सामान्यतः यह स्वीकार किया जाता है कि प्रत्येक साहित्यिक रचना में उसके रचयिता के व्यक्तित्व का कोई न कोई अंश प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में प्रायः समाहित रहता है। 'कवि अपने काव्य में जिस सामग्री—विचार, भाव, कल्पना आदि—का उपयोग करता है, वह प्रायः उसके अध्ययन, अनुभव एवं चिन्तन पर आधारित होती है, अतः किसी भी काव्य-रचना के सम्यक् विश्लेषण के लिए कवि के व्यक्तित्व का अध्ययन आवश्यक होता है तथा व्यक्तित्व सम्बन्धी तथ्यों की जानकारी के लिए उसके जीवन-चरित को खोजना पड़ता है।[१] इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए यहाँ बिहारी के जीवन-चरित सम्बन्धी कतिपय पक्षों का अध्ययन विभिन्न शीर्षकों के अन्तर्गत प्रस्तुत किया जाता है।

(१) नाम

'बिहारी सतसई' के रचयिता का नाम 'बिहारी लाल' था या 'बिहारी दास'—इस बारे में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। प्राचीन टीकाकारों में कृष्ण लाल एवं कृष्णदत्त कवि अपनी टीकाओं में 'बिहारी दास'[२] नाम का उल्लेख करते हैं, जबकि 'लाल-चन्द्रिका'[३], 'बिहारी-बिहार'[४] तथा मिश्र जी की 'भावार्थ-

१. बिहारी सतसई : वैज्ञानिक समीक्षा, डा० गणपतिचन्द्र गुप्त, पृ०१६।
२. कविवर बिहारी लाल और उनका युग, रणधीर सिन्हा, पृ० ७७।
३. बिहारी की सतसई : सं० जार्ज ग्रियर्सन (लल्लू लाल की लाल चन्द्रिका से संयुक्त) पृ० ४।
४. बिहारी बिहार ; पं० अम्बिकादत्त व्यास, पृ० ६।

प्रकाशिका' टीका[५] में 'बिहारी लाल' नाम का उल्लेख मिलता है। लाला भगवानदीन भी अपनी टीका में बिहारी लाल नाम का ही उल्लेख करते हैं।[६] हिन्दी के प्रथम इतिहासकार गार्सां द तासी[७], ग्रियर्सन[८], मिश्रबन्धु[९], आचार्य रामचन्द्र शुक्ल[१०], आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी[११], तथा डा० भागीरथ मिश्र[१२] आदि इतिहासकार भी अपने ग्रन्थों में 'बिहारी लाल' नाम को ही मान्यता देते हैं। जगन्नाथ दास 'रत्नाकर' दोनों मतों का समन्वय करते हुए यह मत व्यक्त करते हैं—'यह भी सम्भव है कि पहले इनका नाम बिहारी लाल रहा हो और पीछे से वैराग्य होने पर बिहारी दास हो गया हो।[१३] किन्तु डा० गणपतिचन्द्र गुप्त ने स्पष्ट शब्दों में 'बिहारी दास' नाम का समर्थन करते हुए प्रतिपादित किया है कि मध्यकाल में बिहारी नाम के दो हिन्दी कवि प्रसिद्ध हुए थे, जिनमें सतसईकार बिहारी दास थे तथा दूसरे टीकाकार बिहारी लाल। ये दूसरे कवि सतसईकार बिहारी के लगभग एक शताब्दी बाद हुए थे और इन्होंने 'रस-चन्द्रिका' नाम की एक टीका लिखी थी। इनका विस्तृत परिचय 'शिव सिंह सरोज' एवं 'मतिराम ग्रन्थावली' आदि में भी मिलता है। हमारे कुछ इतिहास-कारों ने भ्रान्तिवश 'बिहारी दास' एवं 'बिहारी लाल' को एक ही व्यक्ति मानते हुए सतसईकार बिहारी दास को बिहारी लाल बना डाला है।[१४] डा० गुप्त ने 'बिहारी दास' नाम के पक्ष में निम्नांकित प्रमाण प्रस्तुत किये हैं—[१५]

(क) बिहारी के समकालीन कवि कुलपति मिश्र ने जो कि बिहारी के भानजे

---

५. बिहारी सतसई की सरल टीका ; लाला भगवानदीन, पृ० ४।
६. भावार्थ प्रकाश टीका (बिहारी सतसई) प० ज्वाला प्रसाद, पृ० ५।
७. हिन्दुई साहित्य का इतिहास (तासी के ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद), अनुवादक डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, पृ० १८२-८९।
८. हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास (डा० जार्ज ग्रियर्सन के ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद), अनुवादक—किशोरीलाल, पृ० १७५-७६।
९. मिश्रबन्धु, विनोद, द्वितीय भाग, पृ० ४३२।
१०. हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल, पृ० २४६।
११. हिन्दी साहित्य, डा० द्विवेदी, पृ० ३२४।
१२. हिन्दी साहित्य, द्वितीय खण्ड, स० डा० धीरेन्द्र वर्मा, पृ० ४०७।
१३. कविवर बिहारी , जगन्नाथ दास 'रत्नाकर', पृ० ३१६।
१४. बिहारी सतसई : वैज्ञानिक समीक्षा, डा० गुप्त, पृ० १७
१५. वही, पृ० १७–१८।

भी थे, अपनी 'जुवति तरंगिनी' में बिहारी प्रशंसा करते हुए उन्हें 'बिहारी दास' नाम से ही पुकारा है—

'भांति भांति रचना सरस देव गिरा ज्यों व्यास।
त्यों भाषा सब कविनु में विमल बिहारी दास।।'

(ख) बाबू जगन्नाथ दास रत्नाकर को जयपुर से बिहारी सतसई की एक अत्यन्त प्राचीन प्रति प्राप्त हुई थी जो कि बिहारी के आश्रयदाता राजा जयसिंह के पुत्र कुँवर रामसिंह के निमित्त लिखी गई थी, इसमें भी कुछ फुटकर दोहे मिलते हैं जिनमें 'बिहारी दास' नाम दिया हुआ है—

'सुचि सिंगार में बूड़ि कै भयौ बिहारी दास।
जगतैं फिरत उदास अब सुकवि बिहारी दास।।'

(ग) परवर्ती टीकाकारों ने भी 'बिहारी दास' नाम का उल्लेख किया है—

'किए सात सौ दोहरा सुकवि बिहारी दास।
तिनहिं अनुक्रम ए भए, महि मंडल सु प्रकास।।'

—कोविद कवि

सुकवि बिहारी दास सौं तिन कीनों अति प्यार।
बहुत भांति सनमान करि दौलत दई अपार।।

—कृष्ण कवि

(घ) बिहारी के वंश-वृक्ष में भी 'बिहारी दास' नाम ही उपलब्ध है।

डा० गुप्त के मतानुसार 'बिहारी दास' के स्थान पर 'बिहारी लाल' नाम की भ्रांति के दो आधार हैं। एक तो 'बिहारी सतसई' में ही 'बिहारी लाल' नाम आया है—

सखि सिखावत मानविधि सैननि बरजति बाल।
हरें कहै, मो हिय बसत, सदा बिहारी लाल।।

दूसरे, टीकाकार कृष्णलाल ने अपनी टीका 'लाल-चन्द्रिका' में बिहारी के नाम का उल्लेख इस प्रकार किया है—

'लाल बिहारी कृत कथा पढै सो होइ प्रवीन।'

जहाँ पहले दोहे में 'बिहारी लाल' कृष्ण के पर्याय के रूप में 'बाल' के साथ

तुक मिलाने के लिए प्रयुक्त हुआ है, यहाँ 'लाल चन्द्रिका' मे 'लाल' स्वयं टीकाकार के नाम का सूचक है—ऐसा रत्नाकर जी ने भी लिया है। फिर भी उपर्युक्त कारणों से 'बिहारी लाल' नाम चल पड़ा।

अस्तु, उपर्युक्त प्रमाणों एव तर्कों से सिद्ध होता है कि बिहारी के समकालीन व्यक्तियों एव उनके निकटस्थ सम्बन्धियों ने उनका नाम 'बिहारीदास' ही माना है, ऐसी स्थिति मे यदि हम भी इसी नाम का समर्थन करें तो अनुचित न होगा।

(२) जन्म-स्थान

बिहारी के जन्म-स्थान के बारे मे विद्वानो मे अधिक मतभेद नही है क्योकि इसके सम्बन्ध मे एक दोहा उपलब्ध है—

> जनम ग्वालियर जानिये खंड बुदेले बाल।
> तरुनाई आई सुखद, मथुरा बसि ससुराल॥[१६]

विभिन्न विद्वानो ने इस दोहे को प्रामाणिक मानते हुए बिहारी का जन्म ग्वालियर मे ही माना है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल[१७], डा० भागीरथ मिश्र[१८] प्रभृति विद्वानो ने ग्वालियर के निकट बसुआ गोविन्दपुर नामक स्थान को बिहारी का जन्म स्थान माना है।

(३) जन्म-काल

लाला भगवानदीन जी ने बिहारी का जन्म संवत् १६६० मे माना है।[१९] हिन्दी साहित्य के लगभग सभी इतिहासकार यह मानते हैं कि बिहारी का जन्म सत्रहवी शती में हुआ था किन्तु जन्म-सवत् के सम्बन्ध मे मतैक्य नहीं है। ग्रियर्सन[२०] बिहारी का जन्म सत्रहवी शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे, डा० भागीरथ मिश्र[२१] सवत् १६५२, मिश्रबन्धु[२२] एव रामचन्द्र शुक्ल[२३] सवत् १६६० और डा०हजारी

---

१६ हिन्दी नवरत्न, द्वितीय सस्करण, पृ० २७५।
१७. हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल, पृ० २४६।
१८. हिन्दी साहित्य, स० डा० धीरेन्द्र वर्मा, पृ० ४०७।
१९ बिहारी सतसई की सरल टीका, लाला भगवानदीन, पृ० ४।
२०. हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास, अनु० किशोरी लाल गुप्त, पृ० १७५–७६।
२१. हिन्दी साहित्य, स० डा० धीरेन्द्र वर्मा, पृ० ४०७ (द्वितीय खण्ड)।
२२. मिश्रबन्धु विनोद, द्वितीय भाग, पृ० ४३२।
२३. हिन्दी साहित्य का इतिहास ; रामचन्द्र शुक्ल, पृ० २४६।

प्रसाद द्विवेदी[२४] सन् १६०० अथवा संवत् १६५७ अधिक विश्वसनीय मानते हैं। 'बिहारी विहार' की पद्यबद्ध भूमिका के आधार पर रत्नाकर जी[२५] बिहारी का जन्म संवत् १६५२ स्थिर करते हैं तथा डा० नगेन्द्र[२६] द्वारा सपादित 'हिन्दी साहित्य के बृहत् इतिहास' में भी इसी मत की पुष्टि की गई है। डा० गुप्त भी इसी मत को मान्यता देते हैं।[२७] अतः हमारे विचार से बिहारी का जन्म संवत् १६५२ अर्थात् सन् १५९५ ई० के लगभग माना जा सकता है।

(४) बिहारी के पिता

'बिहारी सतसई' में एक दोहा[२८] उपलब्ध है जिसके आधार पर विभिन्न टीकाकार एव आलोचक इस बारे मे एकमत हैं कि उनके पिता का नाम 'केशव राय' था। बिहारी के भानजे कुलपति मिश्र ने भी अपने मातामह की स्तुति करते हुए उन्हें कवि भी बताया है[२९]— अतः यह तो प्राय. सभी विद्वान स्वीकार करते हैं कि बिहारी के पिता कवि केशवराय थे, किन्तु ये प्रसिद्ध कवि केशव (जिन्होंने 'रामचन्द्रिका' की रचना की थी) थे या उनसे कोई भिन्न व्यक्ति थे, इस विषय को लेकर विद्वानो में विवाद है। सर्वप्रथम राधाकृष्ण दास जी ने प्रसिद्ध कवि केशव को ही बिहारी का पिता सिद्ध किया। बाबू जगन्नाथ दास 'रत्नाकर' प्रसिद्ध केशव से बिहारी का निकट सम्बन्ध मानते हुए उन्हें गुरु-शिष्य के रूप मे स्वीकार करते हैं।[३०] पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने किसी अन्य 'केशव-केशवराय' को बिहारी का पिता माना है। डा० गणपतिचन्द्र गुप्त ने अपने शोध-प्रबन्ध मे इस प्रश्न पर पुनर्विचार करते हुए निम्नांकित प्रमाणों के आधार पर प्रसिद्ध कवि केशवदास को बिहारी का पिता माना है[३१]—

---

२४. हिन्दी साहित्य ; डा० द्विवेदी, पृ० ३२४।

२५. कविवर बिहारी—जगन्नाथ दास रत्नाकर, पृ० ३५७।

२६. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, षष्ठ भाग, सं० डा० नगेन्द्र, पृ० ५१२।

२७. बिहारी सतसई: वैज्ञानिक समीक्षा, डा० गुप्त, पृ० २०।

२८. प्रगट भये द्विजराज-कुल, सुबस बसे ब्रज आइ।
मेरे हरौ कलेस सब, केसव केसवराइ॥
—बिहारी रत्नाकर, दो० सं० १०१।

२९. कविवर मातामह सुमिरि केसौ केसौराइ।
कहौं कथा भारथ की भाषा छन्द बनाइ॥ —संग्राम सार।

३०. कविवर बिहारी—जगन्नाथ दास रत्नाकर, पृ० ३५८-५६

३१ हिन्दी काव्य में शृंगार परम्परा और महाकवि बिहारी ; डा० गुप्त द्वि० सं० पृ० ११५–११७।

(क) बिहारी का जन्म ग्वालियर मे हुआ तथा बचपन बुन्देलखण्ड में व्यतीत हुआ और युवावस्था उनकी ससुराल मथुरा मे व्यतीत हुई। दूसरी ओर प्रसिद्ध केशवदास ने भी 'कवि प्रिया' मे अपना परिचय दिया है जिससे स्पष्ट है कि उनकी पितृ-भूमि ग्वालियर थी तथा वे बुन्देलखण्ड के राजाओं के आश्रय मे रहे। केशवदास ने वृद्धावस्था मे सन्यास ले लिया था।

(ख) बिहारी के जन्म के समय कवि केशव लगभग ३४ वर्ष की आयु के थे।

(ग) प्रसिद्ध कवि कुलपति ने सुप्रसिद्ध कवि केशव को अपना मातामह के रूप मे उल्लिखित किया है तथा आचार्य शुक्ल के मतानुसार कुलपति बिहारी के भानजे थे।

(घ) बिहारी की पत्नी केशव की पुत्र-वधू के रूप में प्रसिद्ध थी जो कविता भी रचती थी।

(ङ) बिहारी के गुरू नरहरिदास की गद्दी ओरछा के समीप थी तथा जिनका प्रसिद्ध कवि केशव से गहरा सम्बन्ध था।

(च) केशवदास ने प्रवीणराय पातुर की प्रशंसा अपनी 'कवि-प्रिया' मे की है। इसका उल्लेख बिहारी के भी दो दोहो मे मिलता है।

(छ) 'बिहारी-सतसई' मे बुन्देलखण्ड के कुछ विशेष शब्द प्रयुक्त हुए हैं।

(ज) केशवदास के वर्तमान वशज से प्राप्त वश-पत्र मे केशव के पाच पुत्रो मे से सबसे बड़े का नाम बिहारी दास है तथा बिहारी दास के वशज भी स्वय को प्रसिद्ध कवि केशव का वशज मानते हैं।

प्रसिद्ध कवि केशव से बिहारी का सम्बन्ध मानने के विरोध मे मुख्यत दो युक्तियाँ दी जाती हैं—एक तो यह कि केशव सनाढ्य ब्राह्मण थे जब कि बिहारी चतुर्वेदी माने जाते थे। दूसरे, बिहारी के पिता का नाम 'केशव केशव राय' या 'केशव राय' था। डा० गुप्त ने इन दोनो युक्तियो का खण्डन करते हुए बताया है कि जिस बिहारी को चतुर्वेदी माना जाता है वह सतसईकार बिहारी न होकर 'बिहारी-सतसई' की टीका लिखने वाले 'बिहारी लाल' थे जो बिहारी के लगभग सौ वर्ष बाद बून्दी मे हुए थे। किन्तु बून्दी वाले बिहारी लाल को भ्रान्ति से सतसईकार मान लिया गया। दूसरे, प्रसिद्ध कवि केशवदास ने भी अपने काव्य मे अनेक स्थलों पर केशव-केशवराय, नाम का उल्लेख किया है, जैसे—

'केशव-केशवराय मनो कमलासन के सिर ऊपर सोहैं।'

—रामचन्द्रिका

अत डा० गुप्त के अनुसार 'बिहारी प्रसिद्ध कवि केशवदास के पुत्र थे—यह

एक ऐसा निर्णय है जिसमे किसी भी सन्देह और शंका के लिए अवकाश नहीं।[३२] किन्तु डा० रणधीर सिन्हा ने डा० गुप्त के मत पर पुनर्विचार करते हुए यह आपत्ति की है कि केशवदास के वंशजों से उपलब्ध वंश-वृक्ष को प्रामाणिक नही माना जा सकता क्योंकि इसमें केशव के पाच पुत्र बताए गए हैं किन्तु पुत्री एक भी नहीं।[३३] अर्थात् डा० सिन्हा के अनुसार यह वंश-वृक्ष इसलिए अप्रामाणिक है क्योकि इसमे केशव की पुत्री का नाम का उल्लेख नही है। शायद डा० सिन्हा एवं उनके पथ-प्रदर्शक इस बात को भूल गये कि हिन्दुओं के वंश-वृक्ष में केवल पुत्रो का ही नाम दिया जाता है, पुत्रियों का नही, अन्यथा वे इसे अप्रामाणिक नही मानते। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि केशवदास पर शोध करने वाले विद्वान डा० विजयपाल सिंह एवं डा० किरणचन्द्र शर्मा भी इसी निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि विहारी प्रसिद्ध कवि केशव के ही पुत्र थे। केशवदास और विहारी के व्यक्तित्व में भी ऐसी समानता मिलती है कि दोनो मे पिता-पुत्र सम्बन्ध स्वीकार किया जा सकता है। अतः जब तक इस मत के विपक्ष में कोई ठोस प्रमाण नही मिल जाता, हमें इसे स्वीकार करने में कोई आपत्ति नही है।

(२) विवाह

विहारी के विवाह के सम्बन्ध में विद्वानों में कोई मतभेद नही है। प्राचीन टीकाकारों मे अम्बिकादत्त व्यास[३४], ज्वाला प्रसाद मिश्र[३५] लाला भगवानदीन[३६] आदि विहारी का विवाह मथुरा मे हुआ मानते हैं तथा इसके विपक्ष में किसी अन्य टीकाकार का कोई मत उपलब्ध नही है। इतिहासकारों में डा० ग्रियर्सन[३७] मिश्रबन्धु[३८], रामचन्द्र शुक्ल[३९], लाला सीताराम[४०], डा० भगीरथ

---

३२. विहारी सतसई : वैज्ञानिक समीक्षा, डा० गुप्त, पृ० ३२।

३३. कविवर विहारी लाल और उनका युग, डा० रणधीर सिन्हा, पृ० १२२।

३४. विहारी-विहार, अम्बिकादत्त व्यास, पृ० ७।

३५. भावार्थ प्रकाशिका टीका, भूमिका, पृ० ७।

३६. विहारी सतसई की सरल टीका, लाला भगवानदीन, पृ० ५।

३७. विहारी की सतसई, सं० जार्ज ग्रियर्सन, प्रस्तावना, पृ० ४।

३८. मिश्रबन्धु विनोद, द्वितीय भाग पृ० ४३२।

३९. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० २४६।

४०. सेलेक्शन फ्राम हिन्दी लिट्रेचर, लाला सीताराम, पृ० १८८।

४१. हिन्दी साहित्य, सं० डा० धीरेन्द्र वर्मा, द्वितीय खण्ड, पृ० ४०७।

मिश्र[४१] प्रभृति सभी विद्वान बिहारी की ससुराल मथुरा ही मानते हैं। रत्नाकर जी का मत भी इससे भिन्न नहीं है।[४२]

(६) परिवार

प्राचीन टीकाकार अम्बिकादत्त व्यास[४३] के अनुसार बिहारी लाल की पत्नी अत्यन्त सुशिक्षित थी तथा उनके एक पुत्री एवं एक पुत्र थे। व्यास के अनुसार प्रसिद्ध टीकाकार कृष्णकवि ही बिहारी के पुत्र थे तथा ज्वाला प्रसाद मिश्र[४४] इसकी पुष्टि करते हैं तथा इतिहासकारों में मिश्रबन्धु भी इसी मत का समर्थन करते है।[४५] डा० नगेन्द्र द्वारा सम्पादित 'हिन्दी साहित्य के बृहत इतिहास' में इस मत को मान्यता देने के साथ-साथ एक अन्य मत की भी चर्चा की गई है जिसके अनुसार बिहारी के पुत्र का नाम निरंजन था तथा वह पोष्यपुत्र था।[४६] जगन्नाथ दास रत्नाकर के अनुसार बिहारी की पत्नी सुशिक्षित थी तथा बिहारी के एक भाई और एक बहिन थी।[४७]

(७) आश्रयदाता

प्राचीन टीकाकारों में लल्लूलाल कवि[४८] आमेर के राजा जयसिंह सवाई को बिहारी का आश्रयदाता मानते हैं। अन्य टीकाकार जिन में अम्बिकादत्त व्यास[४९] और ज्वाला प्रसाद मिश्र[५०] प्रमुख हैं, मिर्जा जयसिंह को बिहारी का आश्रयदाता ठहराते हैं। व्यास जी मिर्जा जयसिंह का काल संवत् १६७४ से संवत् १७२४ तक का मानते हैं।[५१] बिहारी के आश्रयदाता के सम्बन्ध में इतिहासकारों में परस्पर कोई मतभेद नहीं है तथा तासी[५२], मिश्रबन्धु[५३],

---

४२. कविवर बिहारी ; जगन्नाथ दास रत्नाकर, पृ० ३५७।
४३ बिहारी-बिहार ; अम्बिकादत्त व्यास, पृ० ६।
४४ भावार्थ-प्रकाशिका टीका , ज्वाला प्रसाद मिश्र, पृ० ९।
४५. मिश्रबन्धु विनोद, पृ० ४३२।
४६. हिन्दी साहित्य का बृहत्त इतिहास, पृष्ठ भाग, सं० डा० नगेन्द्र, पृ० ५१३
४७ कविवर बिहारी ; जगन्नाथ दास रत्नाकर,, पृ० ३५७।
४८. बिहारी की सतसई , जार्ज ग्रियर्सन, पृ० ४।
४६. बिहारी-बिहार , अम्बिकादत्त व्यास, पृ० ८।
५०. भावार्थ-प्रकाशिका टीका , ज्वाला प्रसाद मिश्र, पृ० ११।
५१. बिहारी-बिहार ; पृ० ८।
५२ हिन्दुई साहित्य का इतिहास , अनु० डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, पृ० १८२–८४।
५३. मिश्रबन्धु विनोद, द्वितीय भाग, पृ० ४३२।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल[५४], लाला सीताराम[५५] डा० द्विवेदी[५६] एवं डा० भागीरथ मिश्र[५७] प्रभृति एक स्वर मे जयपुर के राजा मिर्जा जयसिंह को ही विहारी का आश्रयदाता स्वीकार करते हैं।

भारतीय इतिहास ग्रन्थों में मिर्जा जयसिंह के चरित्र का पर्याप्त वर्णन हुआ है। प्रायः सभी इतिहासकार इनका राज्यकाल संवत् १६७४ से १७२४ तक मानते हैं। मिर्जा राजा जयसिंह मुगल साम्राज्य के परम मित्र थे तथा शाहजहां के समक्ष जब कोई समस्या खड़ी होती तो उन्हें जयसिंह का ही मुंह देखना पड़ता था। मुगल झण्डे के नीचे उन्होने मध्य एशिया से लेकर दक्षिण भारत के बीजापुर तक तथा पश्चिम मे कन्धार से लेकर पूर्व मे मुंगेर तक के प्रत्येक क्षेत्र मे युद्ध किया।

सर जदुनाथ सरकार ने 'हिस्ट्री आफ औरंगजेब' नामक पुस्तक मे लिखा है कि जब औरंगजेब और उसके राज्य दरवार की मर्यादा साइस्ताखां की हार तथा सूरत की क्षति के कारण भंग हो रही थी, तब उसने सबसे अधिक योग्य हिन्दू तथा मुसलमान सेनापतियो—जयसिंह और दिलेर खां को शिवाजी को दबाने के लिए भेजा। वे औरंगजेब के समय मे दक्षिण के महाराज्यपाल थे। उनकी मृत्यु बरहानपुर मे २ जुलाई, सन १६६७ ई० में हुई।[५८]

(८) शाहजहां से सम्बन्ध

डा० नगेन्द्र द्वारा सम्पादित[५९] एवं डा० वर्मा[६०] द्वारा सम्पादित इतिहास ग्रन्थो के अनुसार विहारी ने मथुरा मे शाहजहां से भेंट की थी।

(९) अन्य घटनाएँ

डा० नगेन्द्र एवं डा० धीरेन्द्र वर्मा द्वारा सम्पादित इतिहास ग्रन्थों[६१] के आधार पर विहारी के विषय में कई अन्य तथ्य भी प्राप्त होते हैं—

---

५४. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० २४६।
५५. सेलेक्शन फ्राम हिन्दी लिट्रेचर; लाला सीताराम, पृ० १९८।
५६. हिन्दी साहित्य; डा० द्विवेदी, पृ० ३२४।
५७. हिन्दी साहित्य; सं० डा० धीरेन्द्र वर्मा, द्वितीय खण्ड, पृ० ४०७।
५८. कविवर विहारीलाल और उनका युग; डा० रणधीर सिन्हा, पृ० १००।
५९. हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास, षष्ठ भाग, पृ० ५१४।
६०. हिन्दी साहित्य; सं० धीरेन्द्र वर्मा, पृ० ४०७।
६१. (क) हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास, पृ० ५१४, सं० डा० नगेन्द्र।
(ख) हिन्दी साहित्य, सं० डा० धीरेन्द्र वर्मा, द्वि० सं०।

(क) बिहारी को शाहजहां, जयपुर, आमेर तथा अन्य राजाओं से वृत्ति मिलती थी।

(ख) बिहारी स० १६६४ मे वृन्दावन पधारे।

(ग) बिहारी सं० १६७७ में आगरा भी गये तथा वहा उन्होंने फारसी का अध्ययन किया।

(घ) आगरा मे ही उनकी भेंट रहीम खानखाना से हुई तथा वहाँ उन्होंने शाहजहां के पुत्रोत्सव में अन्य कवियो के साथ भाग लिया।

(ङ) वृन्दावन में उन्होने संगीत शिक्षा पायी।

(१०) मृत्यु

प्राचीन टीकाकार लाला भगवानदीन[६२] संवत् १७२० को बिहारी का मृत्यु संवत् मानते हैं। मिश्रबन्धु[६३] एवं आचार्य रामचन्द्र शुक्ल[६४] भी इसी मत को मान्यता देते हैं किन्तु जगन्नाथ दास रत्नाकर[६५] संवत् १७२१ को बिहारी का मृत्यु सवत् स्वीकार करते हैं।

(११) बिहारी के ग्रन्थ

'बिहारी सतसई' बिहारी की एक मात्र उपलब्ध रचना है। प्राचीन टीकाकार प० अम्बिकादत्त व्यास[६६] तथा ज्वाला प्रसाद मिश्र[६७] ने अपनी टीकाओं मे बिहारी की आश्रय-प्राप्ति एव सतसई की रचना सम्बन्धी एक घटना का वर्णन किया है जिसके अनुसार राजा जयसिंह मिर्जा अपनी नवविवाहिता रानी के मोह-पाश मे इतने बध गये थे कि उन्होने शासन के समस्त उत्तरदायित्वो को भुला दिया। मिर्जा जयसिंह को अपने दायित्वो के प्रति सचेत करने के लिए बिहारी ने एक दोहा रचा, जो इस प्रकार है—

नहिं परागु, नहिं मधुर मधु, नहिं विकासु इहिं काल।
अली, कली ही सौं बंध्यौ, आगं कौन हवाल॥

---

६२. बिहारी-सतसई की सरल टीका ; लाला भगवानदीन, पृ० ६५।

६३. मिश्रबन्धु-विनोद, द्वितीय भाग, पृ० ४३२।

६४. *हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० २४६।*

६५. कविवर बिहारी ; जगन्नाथदास रत्नाकर, पृ० ३८२।

६६. बिहारी-बिहार ; पं० अम्बिकादत्त व्यास, पृ० ८।

६७. भावार्थ प्रकाशिका टीका ; ज्वाला प्रसाद मिश्र, पृ० ६।

बिहारी ने किसी प्रकार यह दोहा राजा जयसिंह के पास महल में पहुँचा दिया। राजा जयसिंह ने जब यह दोहा पढ़ा तो वे बिहारी के कवित्व पर मुग्ध हो गये तथा उनसे ऐसे ही और दोहों की रचना करने का अनुरोध किया जिसके फलस्वरूप 'बिहारी-सतसई' की रचना प्रारम्भ हुई। इस घटना की पुष्टि स्वयं सतसई में उपलब्ध इस दोहे से भी होती है—

हुकुम पाइ जयसाहि को, हरि-राधिका-प्रसाद।
करी बिहारी सतसई भरी अनेक सवाद ॥[६८]

प्राय. सभी इतिहासकारों ने बिहारी की आश्रयप्राप्ति एवं सतसई की रचना सम्बन्धी इस घटना को मान्यता दी है। इनमें तासी[६९], ग्रियर्सन[७०], मिश्रबन्धु[७१], रामचन्द्र शुक्ल[७२], डा० भागीरथ मिश्र[७३] प्रभृति उल्लेखनीय है। डा० नगेन्द्र द्वारा सम्पादित 'हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास'[७४] में भी इस घटना का उल्लेख किया गया है। जगन्नाथ प्रसाद तिवारी[७५] ने तो इस घटना को न केवल मान्यता प्रदान की है अपितु इसमें अपनी कल्पना का मिश्रण कर इसे और भी रोचक रूप प्रदान कर दिया है।

(१२) बिहारी-सतसई का रचना-काल

जहाँ तक 'बिहारी-सतसई' के रचनाकाल का सम्बन्ध है, विद्वानों मे मतैक्य का अभाव है। प्राचीन टीकाकारों मे ज्वाला प्रसाद मिश्र[७६] तथा अम्बिकादत्त व्यास[७७] सतसई का रचना काल सवत् १७१९ मानते हैं। लल्लूलाल[७८]

---

६८. बिहारी-रत्नाकर, दो० सं० ७१३।
६९. हिन्दुई साहित्य का इतिहास ; अनुवादक—डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, पृ० १८२-१८४।
७०. हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास ; अनु० किशोरीलाल, पृ० १७५-७६।
७१. मिश्रबन्धु विनोद, द्वितीय भाग, पृ० ४३२।
७२. हिन्दी साहित्य का इतिहास ; रामचन्द्र शुक्ल, पृ० २४६।
७३. हिन्दी साहित्य ; संपादक—डा० धीरेन्द्र वर्मा, पृ० ४०७।
७४. हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास, डा० नगेन्द्र, पृ० ५१२ (षष्ठ भाग)
७५. कविवर बिहारी ; जगन्नाथ दास रत्नाकर, पृ० ३७३-३७४।
७६. भावार्थ प्रकाशिका टीका, प० ज्वाला प्रसाद मिश्र, पृ० ५।
७७. बिहारी-बिहार, पं० अम्बिकादत्त व्यास, पृ० ८ (भूमिका)।
७८. बिहारी की सतसई ; जार्ज ग्रियर्सन द्वारा संपादित, पृ० ४।

कवि बिहारी लाल थे। इनकी सतसई पर कई टीकाएँ लिखी गयी हैं। इस परम्परा के भार ने उनकी भाषा को उनके द्वारा कल्पित उस नायिका की भांति ही मूधो पांव धर सकने के अयोग्य बना दिया है जो अपनी शोभा के भार से ही लड़खड़ा उठी थी। ·········फिर बिहारी सूक्ति सग्राहक कवि थे।"८६

(ग) श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र—"प्रेम के भीतर उन्होंने (बिहारी ने) सब प्रकार की सामग्री, सब प्रकार के वर्णन प्रस्तुत किये और वे भी इन्हीं सात सौ दोहों में ही। यह भी उनकी एक विशेषता ही है। नायिका-भेद या शृंगार का लक्षण-ग्रन्थ लिखने वाले भी, किसी नायिका या अलंकार आदि का वैसा साफ उदाहरण प्रस्तुत करने में समर्थ नही हुए जैसा बिहारी ने किया है। साथ ही हमें यह भी मान लेने में आना-कानी नहीं करनी चाहिए कि उनकी जोड़ का हिन्दी मे कोई दूसरा कवि नही हुआ, क्योंकि मुक्तकों में जो विशेषता होनी चाहिए वे बिहारी में सबसे अधिक मात्रा मे पाई जाती हैं। दुराग्रह करने वालों की दवा ही क्या?"८७ ●

---

८६. हिन्दी साहित्य, पृ० ३२५-३२६।
८७. बिहारी की वाग्विभूति, पृ० ११८-११९।

"यह सारा जीवन अभिव्यक्ति है। हम सब अपने को अभिव्यक्त कर रहे हैं। कोई किसी तरह कोई किसी तरह। कोई लिखकर अभिव्यक्त कर रहा है तो कोई चोरी डकैती कर तो कोई नेता या उपदेशक बन कर............"

—डा० देवराज उपाध्याय

व्यक्तित्व

व्यक्तित्व

* व्यक्तित्व : सामान्य विवेचन
* बिहारी के व्यक्तित्व का बौद्धिक पक्ष
* बिहारी के व्यक्तित्व का भावात्मक पक्ष
* बिहारी के व्यक्तित्व का चारित्रिक पक्ष
* बिहारी के व्यक्तित्व का प्रकार

२ व्यक्तित्व : सामान्य विवेचन

१. व्यक्तित्व : अर्थ

व्यक्तित्व शब्द का कोशगत अर्थ है—'व्यक्ति का विशेष गुण या भाव।'[१] किन्तु आधुनिक हिन्दी साहित्य में 'व्यक्तित्व' शब्द अंग्रेजी शब्द 'पर्सनैल्टि' के पर्याय के रूप में प्रयुक्त होता है। स्वयं 'पर्सनैल्टि' शब्द लैटिन भाषा के 'पर्सोना' (Persona) शब्द से व्युत्पन्न माना जाता है। लैटिन भाषा मे 'पर्सोना' शब्द प्राचीन काल में नाट्य अभिनय के समय पात्रों द्वारा लगाये जाने वाले नकली चेहरों के लिए प्रयुक्त किया जाता था परन्तु शीघ्र ही इसका प्रयोग व्यक्तिगत कार्य के लिए होने लगा।[२] इसी शब्द का एक अन्य अर्थ उस 'वेशभूषा' विशेष से भी लिया जाने लगा जिसे अभिनय करते समय अभिनेता लोग धारण करते हैं। जब व्यक्ति राजा की पोशाक पहनकर रंगमंच पर अभिनय करता है तो उसके क्रियाकलाप उसकी सामान्य दशा से भिन्न हो जाते हैं। चूंकि व्यक्ति के व्यक्तित्व को वाह्य गुणों के द्वारा आंका जाता है अतः 'पर्सोना' शब्द से ही आगे चलकर अंग्रेजी मे 'पर्सनैल्टि' शब्द की उत्पत्ति हो गई।[3] आधुनिक

---

१. हिन्दी शब्द सागर, पृ० ४२६।

2. 'First used among ancients for the dramatic mask, it soon became the name of individual role......'
—Encyclopaedia of Psychology : Edited by Philip Lawrence Harriman. p. 455.

3. Encyclopaedia of Psychology : Edited by Philip Lawrence Harriman. p. 455.

हिन्दी साहित्य में 'व्यक्तित्व' शब्द इसी 'पर्सनैलिटी' शब्द के हिन्दी पर्याय के रूप में ग्रहण किया जाता है।

पारिभाषिक अर्थ

विभिन्न दृष्टिकोणों से व्यक्तित्व के विभिन्न पारिभाषिक अर्थ भी लगाये गए हैं। मेमैन के मतानुसार 'व्यक्तित्व' वह उद्दीपक मूल्य है जो कि एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के लिए रखता है।[४] दार्शनिक दृष्टि से 'व्यक्तित्व पूर्णता का एक आदर्श है। यह आत्मज्ञान है।'[५]

समाजशास्त्री व्यक्तित्व को सामाजिक पृष्ठभूमि का प्रतिबिम्ब मानते हैं। उनके विचारानुसार 'व्यक्तित्व उन समस्त गुणों का संगठन है जो कि समाज में व्यक्ति का कार्य तथा पद निश्चित करते हैं। इस प्रकार व्यक्तित्व को सामाजिक प्रभाव क्षमता के रूप में माना जा सकता है।'[६]

मनोविश्लेषण के जन्मदाता फ्रायड ने व्यक्तित्व के तीन भाग किये हैं—(क) इद (Id), (ख) अहं (Ego) और (ग) नैतिक मन (Super ego)। इद वह अचेतन मन है जिसमें मूल प्रवृत्तियाँ एवं प्राकृतिक इच्छाएँ रहती हैं, जो अनैतिक होती हैं तथा शीघ्र ही तृप्ति चाहती है। अहं चेतना, इच्छा शक्ति, बुद्धि, तर्क आदि है जिसका सम्बन्ध इद तथा नैतिक मन दोनों से होता है। नैतिक मन का सम्बन्ध व्यक्ति के आदर्शों से होता है तथा यह अहं को उसके दोषों के लिए धिक्कारता है। इस प्रकार मनोविश्लेषणात्मक दृष्टिकोण (Psychoanalytical point of view) से इद, अहं तथा नैतिक मन का संयुक्त प्रभाव व्यक्तित्व है।

मनोविज्ञान के अनुसार 'व्यक्तित्व व्यक्ति की, जन्मजात एवं अर्जित विलक्षणताओं अथवा आन्तरिक एवं बाह्य पहलुओं का, गत्यात्मक समन्वय अथवा संगठन है।'[७]

इस प्रकार विभिन्न कोणों से देखने पर हमें व्यक्तित्व के विभिन्न पारिभाषिक

---

4. 'Personality is the stimulus value which one individual has for another.'
5. 'Personality is ideal of perfection. It is self realization.'
—General Psychology. R. B. Gupta, p. 496.
6. Personality is the integration of all traits which determine the role and status of the person in society. Personality might be, therefore, regarded as social effectiveness.
—An outline of Sociology. R. B. Gupta. p. 496.
७. सामान्य मनोविज्ञान, रामबाबू, पृ० ४६८।

अर्थ दिखाई पड़ते हैं। किन्तु यदि हम उपर्युक्त सभी मतों का सूक्ष्म विश्लेषण करें तो हम पायेंगे कि वास्तव में सर्वत्र 'व्यक्तित्व' का अर्थ व्यक्ति के उन विशिष्ट गुणों से ही लिया गया है जो एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति से पृथक करते हैं, केवल सन्दर्भ अलग-अलग हैं। जहाँ दार्शनिक इन विशिष्ट गुणो के पनपने का सम्बन्ध विभिन्न व्यक्तियों का विभिन्न मात्रा में आत्मज्ञान होने से जोडते हैं वहाँ समाज-शास्त्री इसका कारण यह मानते है कि सब व्यक्तियों पर समाज का समान प्रभाव नही पडता। मनोवैज्ञानिक व्यक्तित्व को मनोविज्ञान के सन्दर्भ में देखते हुए इन विशिष्ट गुणो के पीछे भिन्न-भिन्न व्यक्तियो की वंश परम्परा एवं वातावरण की भिन्नता का परिणाम मानते हैं। अस्तु 'व्यक्तित्व' शब्द का प्रयोग आधुनिक युग में व्यक्ति की उन विशेषताओं एवं प्रवृत्तियो के लिए किया जा सकता है जो एक व्यक्ति को दूसरे से पृथक करती हैं।

२. व्यक्तित्व : परिभाषा

मनोविज्ञान के क्षेत्र मे सर्वप्रथम विलियम जेम्स ने 'व्यक्तित्व' की परिभाषा करने का प्रयास किया। उनका सुझाव था कि व्यक्ति की शारीरिक एवं मानसिक शक्तियो को ही नही अपितु उसकी वेशभूषा सहित उन समस्त वस्तुओं के कुल योग को, जिसे वह व्यक्ति अपनी समझता है, 'आत्म' (Self) की संज्ञा दी जानी चाहिए[८]।

जेम्स के अनन्तर विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने 'व्यक्तित्व' की विभिन्न परिभाषाएँ की हैं। मैकडूगल[९] ने जहाँ 'व्यक्ति की समस्त मानसिक शक्तियो एवं प्रवृत्तियो की पारस्परिक घनिष्ठ क्रिया-प्रतिक्रियाओं की समन्वित इकाई को व्यक्तित्व माना वहाँ आग्डन ने 'व्यक्ति के आंतरिक जीवन के प्रकाशन[१०]' को

---

8. 'When the psychologist—philosopher William James suggested that a man's empirical self could not be considered "the sum total of all that he can call his, not only his body and psychic powers, but his clothes......etc." he was opening the way to the psychological description of personality'.
—Encylopaedia of psychology by Philip Lawrence. p. 456.
9. Mc Dougall : 'a synthetic unity of all mental features and functions in their intimate interplay'.
—The Energies of Man, ed. 1932. p. 360.
10. Ogden : 'Personality is the expression of a man's inner life'.

ही व्यक्तित्व की संज्ञा दी है। इसी प्रकार कार्न 'व्यक्ति की समस्त मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं को'[11] कैटल 'विशेष परिस्थिति में व्यक्ति के विशेष व्यवहार को'[12] तथा व्हीलर 'उस विशिष्ट ढांचे अथवा सुव्यवस्थित प्रतिक्रियाओं के उस सन्तुलन को, जो एक व्यक्ति को दूसरे से अलग करती है'[13] व्यक्तित्व मानते हैं।

हम देखते हैं कि इन विद्वानों ने व्यक्तित्व की परिभाषा करते हुए मुख्यतः व्यक्ति के मानसिक पक्ष पर ही बल दिया है तथा व्यक्ति के शारीरिक पक्ष की सर्वथा उपेक्षा कर दी है। उन्होंने ऐसा कदाचित इसलिए किया क्योंकि मनोविज्ञान में मुख्यतः व्यक्ति के मानसिक पक्ष का ही अध्ययन किया जाता है। किन्तु यहां विचारणीय है कि 'व्यक्तित्व' केवल मनोविज्ञान से ही सम्बन्धित नहीं है अतः ये परिभाषाएँ निश्चय ही अव्याप्ति दोष से ग्रस्त हैं।

व्यक्तित्व को, व्यक्ति की समस्त जन्मजात शारीरिक प्रवृत्तियों, प्रेरणाओं, प्रवृत्तियों, आवश्यकताओं, मूल प्रवृत्तियों एवं अनुभवजन्य विकसित मानसिक दशाओं एवं प्रवृत्तियों का कुल योग मानकर ही व्यक्तित्व की समग्रता को समझा जा सकता है। इसके लिए व्यक्ति के मानसिक एवं शारीरिक—दोनों ही पक्षों पर विचार आवश्यक है। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक मार्टन प्रिंस ने ऐसा ही किया है।[14] सी० जी० युंग ने भी 'साधारणतः जीवित प्राणी की जन्मजात मानसिक (मुख्य रूप में) एवं शारीरिक (गौण रूप में) क्षमताओं के विकसित रूप को व्यक्तित्व माना है।'[15] इसी प्रकार डब्ल्यू० जी० आलपोर्ट की मान्यता

11. Karn : 'All the essential psychological processes that distinguish one person from another.'
—Psychology, ed. 1955, p. 190.
12. Cattele : 'personality is that which determines behaviour in a defined situation'. A. I. P. S, p. 22.
13. R. H. Wheeler : 'that particular pattern or balance of organised reactions which sets one individual of from the other…….' —Encyclopaedia of psychology, p. 456.
14. Morton Prince : 'the sum total of all the biological innate dispositions, impulses tendencies appetites and instincts of the individual and the disposition and tendencies acquired by experience.' —The Unconscious, II, I, 1929, p. 532.
15. C. G. Jung : 'personality is the supreme realization of the innate idiosyncrasy of a living being.'
—The Development of Personality, p. 171.

है कि व्यक्तित्व व्यक्ति के मानसिक व शारीरिक तन्त्र का वह गत्यात्मक संगठन है जो उसके वातावरण की अनूठी व्यवस्था को निर्धारित करता है।[16]

इस तरह उपर्युक्त परिभाषाओ का विश्लेषण करने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि व्यक्ति की जन्मजात शारीरिक क्षमताओ, मानसिक शक्तियों एवं प्रवृत्तियों तथा स्वभावगत चारित्रिक गुणो के उस कुल योग को, जो कि व्यक्ति-विशेष को अन्य व्यक्तियो से पृथक करता है, हम व्यक्तित्व कह सकते हैं।

३. व्यक्तित्व के विभिन्न पक्ष

पीछे के विवरण-विश्लेषण से स्पष्ट है कि व्यक्तित्व के दो प्रमुख पक्ष हैं—शारीरिक और मानसिक।

(क) शारीरिक पक्ष—इसके अन्तर्गत व्यक्ति के शरीर की लम्बाई, चौड़ाई, वजन, गठन, आवाज, चेहरे की अभिव्यक्ति, रग इत्यादि अनेक बातें सम्मिलित हैं।

(ख) मानसिक पक्ष—मनोविज्ञान के अनुसार मन के तीन भाग हैं—ज्ञान, इच्छा और क्रिया। ज्ञान का स्वरूप बुद्धि है, इच्छा जब बलवती हो जाती है तो उद्वेग (Emotion) का रूप धारण कर लेती है तथा क्रिया का स्वरूप चरित्र (Character) है। उद्वेग भाव का भी निर्माण करते है। अतः इस प्रकार हम कह सकते हैं कि मन के तीनो गुणो–ज्ञान, इच्छा एव क्रिया के द्वारा ही क्रमश. बुद्धि, भाव एवं चरित्र का निर्माण होता है। ठीक इसी प्रकार हम व्यक्तित्व के मानसिक पक्ष के भी तीन भेद मान सकते हैं—

(अ) बौद्धिक पक्ष,
(ब) भावात्मक पक्ष तथा
(स) चारित्रिक पक्ष।

(अ) बौद्धिक पक्ष—इसके अन्तर्गत विवेक बुद्धि, ग्रहण शक्ति, स्मरण शक्ति, कल्पना-शक्ति, ज्ञान, तर्क एव चिन्तन की शक्ति आदि आती हैं।

(ब) भावात्मक पक्ष—इसके अन्तर्गत सहज प्रवृत्तियाँ, भाव, भावनाएँ मनोदशा, अनुभूतियाँ आदि आती हैं।

---

16. W. G. Allport: 'personality is the dynamic organisation within the individual of those Psycho-physical system that determine his unique adjustment to his environment.'
—A Psychological Interpretation, p. 48.

(ख) चारित्रिक पक्ष—इसमें उन प्रतिक्रियाओं का समावेश होता है जिनका सम्बन्ध हमारी नैतिक और धार्मिक नियमावलियों से तथा व्यक्तिगत रूप से अंगीकृत आचरण के आदर्शों से है।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से चारित्रिक प्रवृत्तियों के अनेक वर्ग-भेद किये जा सकते हैं। डा० गणपति चन्द्र गुप्त ने मनोविज्ञान के आधार पर विचार करते हुए इन्हें निम्नलिखित चार समूहों में बाटा है[१७]—

(१) प्रकृति एवं स्वभाव—जैसे शान्त प्रकृति, चंचल प्रकृति, गंभीर प्रकृति, कोमल प्रकृति इत्यादि।

(२) चारित्रिक गुण—जैसे उदारता, विनम्रता, निष्कपटता, सहिष्णुता आदि।

(३) बौद्धिक मान्यताएँ—जैसे दृष्टिकोण, विचारधारा, आदर्श आदि।

(४) क्रियात्मक प्रवृत्तियाँ—जैसे रुचि, शौक, आदत, व्यवसाय, लोक-व्यवहार आदि।

कुछ मनोवैज्ञानिक 'सामाजिकता' को व्यक्तित्व का अलग पक्ष स्वीकारते हैं। सामाजिकता से उनका अभिप्राय है व्यक्ति समाज से दूर भागता है अथवा तटस्थ रहता है, सामाजिक दृष्टि से आक्रामक है, अभिमानी है या सहानुभूतिशील आदि[१८]। किन्तु हमारे विचार में इन सब बातों का सम्बन्ध वास्तव में व्यक्ति की रुचि तथा स्वभाव से ही है अत हम इसे व्यक्तित्व का अलग पक्ष न मानकर चरित्र एवं कार्य व्यवहार के अन्तर्गत रखना ही उचित समझते हैं। कहा जा सकता है कि सामाजिकता का सम्बन्ध व्यक्ति के बाह्य पक्ष से है अत इसको मानसिक पक्ष के अन्तर्गत रखना ठीक नहीं। किन्तु वास्तव में व्यक्ति की समस्त शारीरिक क्रियाओं पर मस्तिष्क एवं मन का नियन्त्रण होता है अत. व्यक्ति जो-कुछ भी आचरण करता है वह मस्तिष्क या मन के आदेश पर ही करता है अत इसे मानसिक पक्ष के अन्तर्गत रखना सर्वथा उचित है।

इसी प्रकार कुछ विद्वान आध्यात्मिकता को भी व्यक्तित्व का एक अलग पक्ष स्वीकारते हुए व्यक्तित्व के तीन पक्ष मानते हैं—शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक। किन्तु वास्तव में अध्यात्म बुद्धि, भाव एवं कर्म की श्रेष्ठता से सम्बद्ध है अत आध्यात्मिक पक्ष व्यक्तित्व के मानसिक पक्ष की श्रेष्ठता का द्योतक मात्र हैं, इसलिए इसे व्यक्तित्व के एक अलग पक्ष के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता।

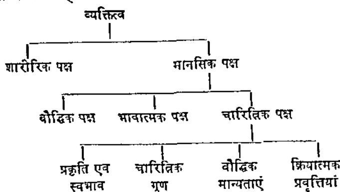
---

१७. साहित्य विज्ञान, डा० गणपति चन्द्र गुप्त, पृ० २३५।

१८. मनोविज्ञान, यदुनाथ सिन्हा, पृ० ३३६।

१९. 'जीवन में भोजन और श्रम का महत्व', आचार्य शिवानन्द अवधूत —'आनन्दलोक' पत्रिका, अक्टू० १९७२ अंक।

व्यक्तित्व के विभिन्न नियोजक तत्वों को तालिका रूप में इस प्रकार समझा जा सकता है—



४. व्यक्तित्व और साहित्य

साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता है और यह एक सीमा तक है भी सही। किन्तु क्या कारण है कि एक ही युग मे, एक ही समाज में रहते हुए दो कवि, एक ही विषय पर दो परस्पर भिन्न कृतियो का सर्जन करते हैं ? क्या कारण है कि दो वैज्ञानिक यदि एक ही फूल का विश्लेषण करते हैं तो उनके निष्कर्ष समान होते हैं जबकि दो साहित्यकार यदि एक ही फूल पर निबन्ध लिखें तो वे परस्पर भिन्न होगे ? इसका कारण यह है कि प्रत्येक साहित्यकार मे एक भिन्न विचारधारा, भिन्न अनुभूतियां और जीवन के प्रति सोचने का एक भिन्न दृष्टि-कोण विद्यमान होता है। विचारधारा, अनुभूति आदि इन वैयक्तिक विशिष्टताओं को, जिनके कारण प्रत्येक साहित्यकार की रचना में अन्तर आ जाता है, वैयक्तिकता का नाम दिया गया है और इसे साहित्य के तीन प्रमुख भेदक लक्षणों में से एक माना गया है। दूसरी ओर 'व्यक्तित्व' का शाब्दिक अर्थ है—व्यक्ति का विशेष भाव या गुण। 'व्यक्तित्व' शब्द पर व्यापक दृष्टि से विचार करते हुए प्रायः इसके अन्तर्गत किसी व्यक्ति के जीवन के प्रति दृष्टिकोण, उसकी विचारधारा, उसके ज्ञानकोष, उसकी अनुभूतियो, उसके चरित्र, उसकी वैयक्तिक, पारिवारिक एवं सामाजिक स्थिति, उसकी रुचि और उसके व्यवहार आदि के समन्वित रूप को लिया जाता है, जबकि दूसरी ओर हम देखते हैं कि साहित्य में भी व्यक्ति की इन निजी अनुभूतियो, जीवन के प्रति दृष्टिकोण, पारिवारिक स्थिति, चरित्र, उसके ज्ञानकोष इत्यादि का ही प्रतिफलन होता है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि साहित्य में रचयिता के व्यक्तित्व का ही प्रतिफलन होता है।

डा० देवराज उपाध्याय ने इसे स्पष्ट करते हुए कहा है—"यह सारा जीवन अभिव्यक्ति है। हम सब अपने को अभिव्यक्त कर रहे हैं। कोई किसी तरह, कोई किसी तरह। कोई लिखकर अभिव्यक्त कर रहा है, तो कोई चोरी डकैती कर, तो कोई नेता या उपदेशक बनकर।"[२०] अतः इसमें कोई सन्देह नहीं कि प्रत्येक कृति पर कृतिकार के व्यक्तित्व की अमिट छाप विद्यमान रहती है।

हम पीछे विवेचन कर चुके हैं कि व्यक्तित्व के चार पक्ष होते हैं—शारीरिक बौद्धिक, भावात्मक और चारित्रिक। इसी प्रकार साहित्य के भी दो तत्त्व प्रधान हैं—विषयवस्तु और शैली। यहाँ हम क्रमशः इस पर विचार करेंगे कि व्यक्तित्व के किस पक्ष का साहित्य के किस तत्त्व से कितना सम्बन्ध है।

(क) व्यक्तित्व और विषयवस्तु

१. व्यक्तित्व का शारीरिक पक्ष और विषयवस्तु—व्यक्तित्व के शारीरिक पक्ष का साहित्य की विषयवस्तु से कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है, फिर भी कुछ मनोवैज्ञानिक अप्रत्यक्ष रूप में व्यक्तित्व के शारीरिक पक्ष का विषयवस्तु के तीन तत्त्वों—विचार, भाव, और कल्पना में से विचार और भाव तत्त्वों से सम्बन्ध मानते हैं। उनका कहना है कि शारीरिक दृष्टि से स्वस्थ व्यक्ति में ही महान विचारों एवं श्रेष्ठ भावों का उदय होगा[२१] और रुग्ण साहित्यकार में निम्नकोटि के विचार एवं भाव उत्पन्न होंगे किन्तु वास्तव में यदि यह सत्य होता तो कई महान व्यक्ति जीवन के अन्तिम क्षणों में अस्वस्थ रहते हुए भी महान रचनाओं का सर्जन नहीं करपाते। दूसरी ओर अत्याधुनिक साहित्यकार शारीरिक दृष्टि से स्वस्थ होते हुए भी निकृष्ट कोटि की रचनाओं का सर्जन करते देखे जा सकते हैं, अतः हमारे विचार में व्यक्तित्व के शारीरिक पक्ष का विषयवस्तु में विशेष सम्बन्ध नहीं है।

(२) बौद्धिक पक्ष और विषयवस्तु—प्रत्येक व्यक्ति साहित्य रचना में जिन विचारों का प्रतिपादन करता है, वे उसके बौद्धिक पक्ष की ही देन होते हैं। विषयवस्तु के तीन तत्त्वों—विचार, भाव और कल्पना में से विचार तत्त्व साहित्यकार के सामान्यज्ञान, उसकी तर्कशक्ति, स्मरणशक्ति आदि पर आश्रित होता है तथा कल्पना तत्त्व का मुख्य रूप से सम्बन्ध साहित्यकार की कल्पना शक्ति से है। लेकिन जैसा कि हम पीछे स्पष्ट कर चुके हैं, मनोवैज्ञानिक व्यक्तित्व के बौद्धिक पक्ष के अन्तर्गत व्यक्ति की सामान्य बुद्धि, ग्रहण शक्ति, स्मरण शक्ति,

---

२०. साहित्य एवं शोध कुछ समस्याएं, डा० देवराज उपाध्याय, पृ० ११४।
२१. सामान्य मनोविज्ञान ; रामबाबू गुप्त, पृ० ५०२।

कल्पना शक्ति, चिन्तन शक्ति आदि को लेते हैं, अतः हमें यह मानना पड़ेगा कि व्यक्तित्व के बौद्धिक पक्ष का विषयवस्तु के विचार एवं कल्पना तत्त्व से घनिष्ठ सम्बन्ध है।

(३) **भावात्मक पक्ष और विषयवस्तु**—विषयवस्तु के तीन तत्त्वों—विचार भाव या कल्पना मे से भावतत्त्व को अनेक आचार्यों ने साहित्य की आत्मा घोषित किया है। स्थूल घटनाओं और विस्तृत इतिवृत्त निरूपण की अपेक्षा साहित्य मे सूक्ष्म भावनाओ का अधिक महत्त्व है। लेकिन श्री युग महोदय मानते हैं कि—भाव व्यक्ति की अनुभूति चेष्टाओ एवं दैहिक गतियों से सम्बन्धित वह अव्यवस्थित अवस्था है जोकि विशेष मनोवैज्ञानिक परिस्थितियो मे उत्पन्न होती है।[२२] अन्य विद्वान भी मानते हैं कि भावना एक अर्जित प्रवृत्ति है जिसका निर्माण धीरे-धीरे कई अनुभवों एवं क्रियाओ से होता है।[२३]—'भावनाएँ भावों के रूप मे अभिव्यक्त होती हैं।'[२४] 'मनोदशा भी भावोद्दीपन का कारण बन सकती है।'[२५] अनुभूति और भाव मे सूक्ष्म अन्तर होते हुए भी वे एक दूसरे से घनिष्ठ रूप में सम्बद्ध हैं।[२६] अतः स्पष्ट है कि साहित्य मे अभिव्यक्त भाव एवं भावनाएँ व्यक्ति की सहज प्रवृत्तियों, निजी अनुभूतियो, मनोदशाओं आदि पर आधारित होती हैं। दूसरी ओर मनोवैज्ञानिक व्यक्तित्व के भावात्मक पक्ष के अन्तर्गत सहज प्रवृत्तियों, भावनाओं, मनोदशाओ, अनुभूतियों आदि को लेते हैं, अत निश्चय ही व्यक्तित्व के भावात्मक पक्ष का विषयवस्तु के भाव तत्त्व मे गहरा सम्बन्ध है।

विषयवस्तु के शेष दो तत्त्वो मे से विचारतत्त्व व्यक्ति की निजी अनुभूतियो पर भी आधारित होता है। 'प्रत्येक दार्शनिक अपनी अनुभूतियो के विश्लेषण के द्वारा विचारो का विकास करता है तो दूसरी ओर हम व्यावहारिक जीवन में विचारो की अनुभूति भी प्राप्त करते हैं।—तर्क, और कल्पना की सहायता से अनुभूतियों को विचारो मे और विचारो को अनुभूतियो मे परिणत किया जा सकता है।[२७] लेकिन अनुभूतियाँ व्यक्तित्व के भावात्मक पक्ष के अन्तर्गत आती

---

22. Emotion in man and animal, p. 51.
23. Mc. Dougall : An outline of psychology. p. 418.
२४. साहित्य का वैज्ञानिक विवेचन ; डा० गणपति चन्द्र गुप्त, पृ० ११०।
२५. वही, पृ० ११०।
२६. वही, पृ० १०६।
२७. वही, पृ० १६६।
28. E. G. Moll : The Appreciation of poetry. p. 74.

हैं, अतः व्यक्तित्व के भावात्मक पक्ष का विषयवस्तु के विचार तत्व के साथ भी स्पष्ट सम्बन्ध है।

विषयवस्तु के तीसरे तत्त्व कल्पना तत्त्व के सम्बन्ध में माल महोदय का कहना है कि—'अपने सरलतम रूप में कल्पना एक ऐसी मानसिक शक्ति है जोकि पूर्व अनुभूत तत्वों की नयी प्रतिलिपियों का पुनरुत्पादन करती है।'[२८] अन्य अनेक विद्वान भी यह स्वीकार करते हैं कि 'कल्पना पूर्व अनुभूतियों पर आधारित होती है।'[२९] अत. हमें यह मानना होगा कि विषयवस्तु के तीसरे तत्त्व कल्पना का व्यक्तित्व के भावात्मक पक्ष के साथ भी सम्बन्ध है।

इस प्रकार हम देखते है कि व्यक्तित्व के भावात्मक पक्ष का विषयवस्तु के तीनों तत्त्वो से गहरा सम्बन्ध है।

(४) चारित्रिक पक्ष एवं विषयवस्तु—मनोवैज्ञानिक चारित्रिक पक्ष के अन्तर्गत व्यक्ति की प्रकृति, स्वभाव, बौद्धिक मान्यताओं, रुचि और शौक इत्यादि को लेते हैं। साहित्यकार जब किसी अन्य के विचारो का खण्डन करता है तो उसके पीछे उसकी राजनीतिक, दार्शनिक, धार्मिक इत्यादि बौद्धिक मान्यताओं का हाथ होता है। हर साहित्यकार का जीवन की प्रत्येक वस्तु के प्रति एक निजी दृष्टिकोण होता है जो साहित्य-रचना के समय विचार बनकर अभिव्यक्त होता है। इसके अतिरिक्त तुलसी ने राम का चरित्र लिखा और सूर ने कृष्ण का, इसका कारण इन कवियो की निजी बौद्धिक मान्यताओ एवं आदर्श के साथ-साथ उनकी इनके प्रति रुचि एवं शौक भी था। अतः हमे यह मानना होगा कि विचार का व्यक्तित्व के चारित्रिक पक्ष के साथ गहरा सम्बन्ध है।

विद्वान यह मानते हैं कि 'भाव भावनाओ के रूप मे संघटित होते हैं।'[30] 'जब विभिन्न भावनाएं हमारे चरित्र की स्थायी अंग बन जाती हैं तो इन्हे ही मनोवृत्ति या स्वभाव कहा जाता है, अत मनोवृत्ति, स्वभाव एवं चरित्र को भावनाओ का ही अधिक स्थिर एव संघटित रूप माना जा सकता है।'[31] दूसरे शब्दो मे हम कह सकते हैं कि भाव का स्थिर एव संघटित रूप स्वभाव एव चरित्र है। लेकिन स्वभाव एव चरित्र व्यक्तित्व के चारित्रिक पक्ष के अन्तर्गत आते हैं, अत. व्यक्तित्व के चारित्रिक पक्ष का विषयवस्तु के भावतत्त्व से भी गहरा सम्बन्ध है यह हमे स्वीकार करना होगा। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल भी चारित्रिक प्रवृत्तियो को 'शील दशा' की संज्ञा देते हुए लिखते हैं—'उपर्युक्त विवेचन का संक्षिप्त परिणाम यह निकला कि जिन्हे साहित्य मे भाव कहते हैं,

---

२९. साहित्य-विज्ञान, डा० गुप्त, पृ० ३८७।
३०. साहित्य विज्ञान; डा० गुप्त, पृ० ११०।
३१. वही, पृ० १११।

उनकी तीन दशाएं मिलती हैं—भाव दशा, स्थायी दशा और शील दशा।'[32] ......'उच्च लक्ष्य रखने वाले मनुष्य की प्रकृति का संस्कार या निर्माण करने की सामर्थ्य रखने वाले प्रवन्ध-काव्य या नाटक के चरित्र-चित्रण का आधार 'शीलदशा' ही है।'[33]

वैसे भी कई वार साहित्य-रचना में स्वानुभूतियों के स्थान पर आरोपित या दूसरों से उधार ली हुई अनुभूतियाँ व्यक्त हो जाती हैं, अतः ऐसी स्थिति में साहित्य में अभिव्यक्त भावों का सम्बन्ध साहित्यकार की रुचि एवं शौक से होने के कारण व्यक्तित्व के भावात्मक पक्ष से न होकर व्यक्तित्व के चारित्रिक पक्ष से अधिक होगा।

इस प्रकार हम देखते हैं कि व्यक्तित्व के चारित्रिक पक्ष का विषयवस्तु के विचार एवं भाव तत्व, दोनों के साथ ही घनिष्ठ सम्बन्ध है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि व्यक्तित्व के चारों पक्षों में से तीन पक्षों—बौद्धिक, भावात्मक एवं चारित्रिक पक्ष का, विषयवस्तु पर किसी न किसी रूप में प्रभाव अवश्य पड़ता है। व्यक्तित्व के बौद्धिक एवं भावात्मक पक्ष का विषयवस्तु से अपेक्षा कृत अधिक घनिष्ठ सम्बन्ध है तथा शारीरिक पक्ष का विषय-वस्तु से बहुत कम सम्बन्ध है।

(ख) व्यक्तित्व और शैली

(१) व्यक्तित्व का शारीरिक पक्ष और शैली—व्यक्तित्व के शारीरिक पक्ष का शैली से बहुत कम सम्बन्ध है, लेकिन हम यह भी नहीं कह सकते कि उसका शैली से कोई सम्बन्ध है ही नहीं। मनोवैज्ञानिक व्यक्तित्व के शारीरिक पक्ष के अन्तर्गत व्यक्ति के रूप-सौन्दर्य, शारीरिक शक्ति इत्यादि को लेते हैं। व्यक्ति का शारीरिक रूप सौन्दर्य प्रत्यक्ष रूप से तो नहीं किन्तु अप्रत्यक्ष रूप से उसकी शैली को प्रभावित कर सकता है। शारीरिक हीनता एवं कुरूपता कई बार व्यक्ति के मन में हीनता की भावना उत्पन्न कर देती है, जिसकी प्रतिक्रिया स्वरूप ऐसे व्यक्ति अन्य क्षेत्रों में विशिष्टता प्राप्त करने का प्रयास करते हैं।[34] मध्यकालीन कवि मलिक मुहम्मद जायसी ने पद्मावत में एक स्थान पर लिखा है कि 'एक आँख का होने पर भी मुहम्मद ने ऐसा काव्य गुना है कि जिसने

---

३२. रस-मीमांसा ; आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ० १८६।
३३. वही, पृ० १८६।
३४. साहित्य विज्ञान ; डा० गुप्त, पृ० २३२।

यह काव्य सुना वही मोहित हो गया।[३५] इससे स्पष्ट है कि जायसी के मन में काव्य-रचना के समय अपनी शारीरिक हीनता की ग्रन्थि विद्यमान थी। यह भी तथ्य है कि जायसी के काव्य में अलंकरण एवं चमत्कार प्रदर्शन की प्रवृत्ति अधिक मिलती है और इसका बहुत कुछ श्रेय हम जायसी की शारीरिक हीनता को दे सकते हैं।

अस्तु, व्यक्तित्व के शारीरिक पक्ष का शैली पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रभाव परिस्थितियों के अनुसार न्यूनाधिक मात्रा में अवश्य पड़ता है।

(२) **बौद्धिक पक्ष और शैली**—जैसा कि पीछे स्पष्ट किया जा चुका है व्यक्तित्व के बौद्धिक पक्ष के अन्तर्गत व्यक्ति की सामान्य बुद्धि, ग्रहण शक्ति, स्मरण शक्ति, कल्पना शक्ति, चिन्तन शक्ति आदि को लिया जाता है। इनमें से ग्रहण शक्ति का सम्बन्ध साहित्य में प्रयुक्त भाषा के साथ तथा कल्पनाशक्ति का सम्बन्ध विभिन्न दृश्यों, घटनाओं के वर्णन, चित्रण एवं अलंकरण से है। यह भी तथ्य है कि मानसिक शक्तियां सभी व्यक्तियों में समान अनुपात में नहीं होतीं अतः उनके द्वारा प्रस्तुत सामग्री में भी अन्तर आ जाता है। ग्रहण-शक्ति के अन्तर के कारण ही दो कवियों की भाषा-शैली के घटक तत्त्वों—शब्दावली, अर्थशक्ति, व्याकरण, मुहावरे आदि में तथा कल्पनाशक्ति के कारण बिम्ब-विधान, अलंकार-योजना, व्यंग्यात्मकता, वस्तु-नियोजना आदि में अन्तर आ जाता है, जिनका सम्बन्ध साहित्य की शैली से है। अतः व्यक्तित्व के बौद्धिक पक्ष की विशिष्टताओं का साहित्यकार की शैली गत विशिष्टताओं से गहरा सम्बन्ध अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

(३) **भावात्मक पक्ष और शैली**—मनोवैज्ञानिक व्यक्तित्व के भावात्मक पक्ष के अन्तर्गत व्यक्ति की अनुभूति, संवेदना, भावावेग, भावना, मनोदशा आदि भावात्मक प्रवृत्तियों को लेते हैं। जब एक साहित्यकार सच्ची अनुभूति एवं भाव की यथार्थ प्रेरणा से प्रेरित होकर साहित्य सृजन करता है तो उसकी शैली में सहज ही अनेक आकर्षक तत्त्व समाविष्ट हो जाते हैं जो अन्यथा नहीं होते। मनोदशा का भी शैली पर बहुत प्रभाव पड़ता है। मन की शान्त अवस्था में व्यक्ति भाषा के सामान्य एवं स्थिर रूप का प्रयोग तथा उत्तेजित अवस्था में भाषा के विशिष्ट रूप का प्रयोग करता है। 'भावावेश के समय हमारा स्वर विचित्र प्रकार से उच्च या मंद, उच्चारण अस्पष्ट, शब्द अस्फुट अर्थ लाक्षणिक या व्यंग्य हो जाता है। साथ ही भाव की गंभीरता एवं दीर्घता के अनुसार भी

---

३५. 'एक नैन कवि मुहम्मद गुनी। सोइ विमोहा जेई कवि सुनी।'
—पद्मावत ; सं० डा० वा० श० अग्रवाल, पृ० २०।

हमारी अभिव्यक्ति का स्वरूप परिवर्तित होना है। अस्तु, व्यक्तित्व के भावात्मक पक्ष का सम्बन्ध न केवल हमारे कथ्य से है अपितु कथन विधि से भी उसका गहरा सम्बन्ध है[३६]।

(४) चारित्रिक पक्ष और शैली—मनोवैज्ञानिक चारित्रिक पक्ष के अन्तर्गत व्यक्ति की प्रकृति एवं स्वभाव, चारित्रिक गुण, बौद्धिक मान्यताओं, क्रियात्मक प्रवृत्तियों आदि को लेते हैं। इनका लेखक की शैली से गहरा सम्बन्ध है। शान्त और गंभीर प्रकृति के लेखकों की शैली मे प्राय. गभीरता अथवा स्थिरता का गुण तथा अस्थिर एवं चंचल प्रकृति के लेखको मे शैली गत चंचलता अथवा परिवर्तनशीलता दृष्टिगोचर होती है।[३७] व्यक्ति की रुचि, प्रेरणा-स्रोत, आदत, व्यवसाय आदि का भी शैली पर कुछ प्रभाव अवश्य पडता है। रीतिकाल मे कवित-सवैयो का प्रचलन अधिक था पर विहारी ने दोहा शैली को स्वीकार किया, इसे कवि का रुचि-भेद ही कहेंगे। साहित्यकार अपने व्यवसाय एव कार्य-क्षेत्र के अनुसार ही जनता के विभिन्न वर्गों के सम्पर्क में आता है एवं उन लोगों की रुचि, प्रवृत्ति एव शैली से प्रभावित होता है। श्री एफ० एल० ल्यूकस ने शैली सम्बन्धी अपने ग्रन्थ[३८] मे शैली के विभिन्न गुणदोषो की व्याख्या व्यावहारिक प्रवृत्तियो के आधार पर की है। उनकी मान्यता है कि जो लेखक पाठको के प्रति सद्व्यवहार करना चाहता है, उसकी शैली में सरलता एवं स्पष्टता होती है जब कि इसके विपरीत अशिष्ट लेखको की शैली मे इन गुणो का अभाव रहता है।[३९] अतः हमे व्यक्तित्व के चारित्रिक पक्ष का शैली से गहरा सम्बन्ध स्वीकार करना होगा।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि व्यक्तित्व के चारों पक्षो का शैली से कही-न-कही सम्बन्ध अवश्य है, चाहे मात्रा कम हो या अधिक।

निष्कर्ष

(१) व्यक्तित्व के भावात्मक पक्ष का साहित्य से सर्वाधिक सम्बन्ध है।
(२) शारीरिक पक्ष का साहित्य से सबसे कम सम्बन्ध है।

---

३६. साहित्य विज्ञान; डा० गुप्त, पृ० २३४।
३७. वही, पृ० २३५।
३८. एफ० एल० ल्यूकस; स्टाईल।
३९. वही, पृ० ६७।

तालिका

व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों का साहित्य के विभिन्न तत्त्वों से सम्बन्ध

			विषय वस्तु			शैली
			विचार	भाव	कल्पना	
व्यक्तित्व	मानसिक पक्ष	चारित्रिक पक्ष	+	+		+
		भावात्मक पक्ष	+	+	+	+
		बौद्धिक पक्ष	+		+	+
	शारीरिक पक्ष					+

(+) यह चिन्ह इस बात का द्योतक है कि किस पक्ष का किस के साथ सम्बन्ध है ।

३ | विहारी के व्यक्तित्व का बौद्धिक पक्ष

हम पीछे स्पष्ट कर चुके हैं कि व्यक्तित्व के बौद्धिक पक्ष के अन्तर्गत व्यक्ति की कल्पना शक्ति, स्मृति, तर्क शक्ति, ग्रहण शक्ति आदि की गणना की जाती है, अत: विहारी के व्यक्तित्व के बौद्धिक पक्ष को जानने के लिए हम यहाँ क्रमशः विहारी की कल्पना शक्ति, स्मृति, तर्क शक्ति, ज्ञान शक्ति एवं ग्रहण शक्ति पर विचार करेंगे।

१. विहारी की कल्पना-शक्ति

कल्पना : परिभाषा—प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक मैक्डूगल[1] ने कल्पना की परिभाषा करते हुए कहा है कि 'कल्पना अप्रत्यक्ष वस्तुओ के सम्बन्ध मे चिन्तन मनन है।' इसी प्रकार एक मनोवैज्ञानिक ई० जी० मोल[2] का कहना है कि 'कल्पना अपने सरलतम रूप में एक ऐसी शक्ति कही जा सकती है जो कि पूर्व अनुभवों की प्रतिलिपि पुनरुत्पादन करती है। 'एन्साइकलोपीडिया आफ रिलीजियन एण्ड ऐथिक्स' के अनुसार कल्पना वह मानसिक शक्ति है जो कि वस्तुओं की अनुपस्थिति मे उन्हें मस्तिष्क के समक्ष प्रस्तुत करती है।

डा० यदुनाथ सिन्हा[3] कल्पना के लक्षणों का स्पष्टीकरण करते हुए कहते

1. Mc Dougall : 'We may properly define imagination or imagining as thinking of remote objects.'
—An Outline of Psychology, p. 284.
2. E. G. Moll : The Appreciation of Poetry, p. 74.
३. मनोविज्ञान : यदुनाथ सिन्हा, पृ० १८६।

हैं—'यह अतीत के अनुभवो के तत्त्वो को पुन उत्पन्न करती है और उन्हें नवीन संयोगो मे रखती है।' अपने मत के और अधिक स्पष्टीकरण के लिए डा० सिन्हा उदाहरण देते हैं—'आपने भूतकाल मे गुलाब के फूलो और नीले रग को देखा है, किन्तु नीले गुलाबों को कभी नही। लेकिन आप एक गुलाब की प्रतिमा और नीले रग की प्रतिमा का पुनरुत्पादन कर सकते हैं तथा उन्हे एक नीले गुलाब की प्रतिमा मे सयुक्त कर सकते हैं। इसी प्रकार आप एक सुनहरे पहाड या दस सिर वाले राक्षस की प्रतिमा कल्पित कर सकते हैं और चलते हुए सिर हीन मनुष्यो की प्रतिमाए कल्पित कर सकते है।'[3*]

निश्चय ही कल्पना मे अतीत के अनुभवो की हू-बहू पुनरावृति नही होती अपितु उन्हें नये रूपों मे प्रस्तुत किया जाता है। हम एक स्थान पर 'शेर' को और दूसरे स्थान पर 'मनुष्य' को देखकर एक ऐसे प्राणी की कल्पना कर सकते हैं जिसका सिर शेर का और धड मनुष्य का हो। इस 'नृसिंह' प्राणी की जो प्रतिमा हमारे मस्तिष्क में उभरेगी वह 'नर' और 'सिंह' की प्रतिमाओं का सयुक्त परिणाम होते हुए भी 'नर' और 'सिंह' दोनों की प्रतिमाओ से भिन्न होगी। अत हम सक्षेप मे कह सकते हैं कि "कल्पना मानसिक हस्त व्यापार है। जब व्यक्ति पिछले यथार्थ निरीक्षित तथ्यो का स्मरण करता है एव फिर इन तथ्यों को नवीन नमूने मे पुनः व्यवस्थित करता है तो वह कल्पना का प्रदर्शन करता है।"[४]

कल्पना के भेदोपभेद— कल्पना का सूक्ष्म विश्लेषण करने के पश्चात् विभिन्न मनोवैज्ञानिक इस निर्णय पर पहुँचे हैं कि कल्पना के मुख्यत· दो भेद हैं[५]—

(१) ग्रहणात्मक (Receptive)

(२) सर्जनात्मक (Creative)

किसी वर्णित विषय को हम जिस कल्पना शक्ति से ग्रहण करते हैं उसे ग्रहणात्मक एवं जिस कल्पना शक्ति से हम नये विषय की रचना करते हैं उसे सर्जनात्मक कल्पना शक्ति का नाम दिया गया है।

---

३ *—मनोविज्ञान, यदुनाथ सिन्हा, पृ० १९०।

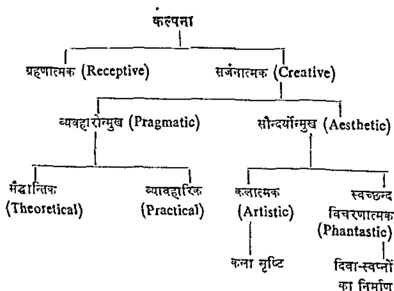
4. Wood Worth—'Imagination is mental manipulation, when the individual recalls facts previously observed in reality and then proceeds to arrange these facts into a new pattern he is said to show imagination,... ..'
—Psychology, ed. 1937, p. 488.

५—६. माडर्न एजूकेशन एण्ड साइकालोजी, वी० एन० झा, पृ० ३२८, ३२० क्रमश।

सर्जनात्मक कल्पनाशक्ति के भी दो उपभेद किये गये हैं :—(१) व्यवहारोन्मुख (Pragmatic)—जिसका लौकिक व्यवहार में प्रयोग होता है और (२) सौन्दर्योन्मुख (Aesthetic)–जिसका उपयोग कला सृष्टि मे किया जाता है।

इनमे भी प्रत्येक के दो-दो भेद हैं। व्यवहारोन्मुख के दो भेद हैं—(क) सैद्धान्तिक (Theoretical) और (ख) व्यावहारिक (Practical)। इसी प्रकार सौन्दर्योन्मुख कल्पना के दो भेद हैं—(अ) कलात्मक (Artistic) एव (ब) स्वच्छन्द विचरणात्मक (Phantastic)। सैद्धान्तिक कल्पना के द्वारा विभिन्न प्रकार के नए सिद्धान्तों की खोज की जाती है तथा व्यावहारिक कल्पना शक्ति का उपयोग इन सिद्धान्तो को व्यावहारिक रूप देने मे किया जाता है। कलात्मक कल्पना के द्वारा कला की सृष्टि की जाती है तथा स्वच्छन्द विचरणात्मक कल्पनाशक्ति के द्वारा दिवा-स्वप्नो का निर्माण होता है।

कल्पना के विभिन्न भेदोपभेदो को सक्षेप में इस प्रकार समझा जा सकता है—

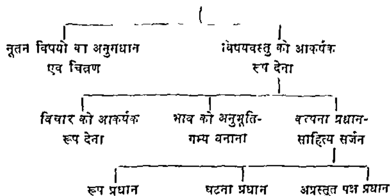


साहित्य-सर्जन में सौन्दर्योन्मुखी कलात्मक कल्पना शक्ति (Artistic Imagination) का उपयोग होता है। यह स्वच्छन्द, वैयक्तिक एव आनन्ददायक होती है। इसी सौन्दर्योन्मुखी कलात्मक कल्पनाशक्ति की सहायता से कवि या साहित्यकार विषयवस्तु का आविष्कार, प्रस्तुतीकरण एवं विस्तार करता हुआ उसे कलात्मक रूप प्रदान करता है। यही कारण है कि 'सौन्दर्योन्मुखी कलात्मक

कल्पनाशक्ति' को कुछ विद्वान[७] 'साहित्यिक प्रतिभा' का पर्यायवाची भी मानते हैं।

साहित्य सर्जन मे सौन्दर्योन्मुखी कलात्मक कल्पना शक्ति के कार्यों को इस प्रकार समझा जा सकता है—

सौन्दर्योन्मुखी कलात्मक कल्पनाशक्ति के साहित्य सर्जन में कार्य



बिहारी की कल्पना शक्ति -कल्पना शक्ति (Artistic imagination) प्रधानत दो रूपों मे कार्य करती है—

(क) नूतन विषयो का अनुसन्धान एवं चित्रण—सौन्दर्योन्मुखी कलात्मक कल्पनाशक्ति का पहला कार्य है नूतन विषयो का अनुसधान एवं चित्रण करना। बिहारी की कल्पनाशक्ति ने इस क्षेत्र मे पर्याप्त सफलता प्राप्त की है। निम्नांकित दोहे इस सफलता के स्पष्ट प्रमाण हैं—

> कन दैबौ सौंप्यौ ससुर, बहू थुरहथी जानि।
> रूप रह चटै लगि लग्यौ, मांगन सबु जगु आनि॥[८]
> \+　　　　+　　　　+
> चित पित मारक-जोगु गनि भयौ, भयैं सुत, सोगु।
> फिरि हुलस्यौ जिय जोइसी, समुझैं जारज-जोगु॥[९]
> \+　　　　+　　　　+

७ बिहारी-सतसई वैज्ञानिक अध्ययन, (डा० गणपतिचन्द्र गुप्त), पृ० ३४।
८. बिहारी-रत्नाकर, जगन्नाथ दास रत्नाकर, दो० स० २६५।
९. वही, दो० स० ५७५।

बहु धनु लै, अहसानु कै, पारौ देत सराहि ।
बैद-बधू हँसि भेद सौं, रही नाह-मुँह चाहि ॥[१०]

यदि प्रसंगो की नूतनता की दृष्टि से देखें तो बिहारी अपनी परम्परा के कवियों से बहुत आगे दिखाई देंगे, क्योंकि उन्होंने नायक नायिका की क्रीड़ाओं के इतने अधिक नूतन प्रसंगों की कल्पना की है कि शायद ही किसी अन्य मुक्तककार कवि ने ऐसा किया हो[११] ।

(घ) **विषयवस्तु को आकर्षक रूप प्रदान करना**—सौन्दर्योन्मुखी कलात्मक कल्पनाशक्ति का दूसरा कार्य विषयवस्तु को बिम्बात्मक रूप में प्रस्तुत करके उसे आकर्षक रूप प्रदान करना है । ऐसा वह तीन प्रकार से करती है—

(i) विचारों को आकर्षक रूप प्रदान करके ।

(ii) भावों को अनुभूतिगम्य अथवा आकर्षक बनाकर ।

(iii) स्वतन्त्र रूप मे—कल्पना-प्रधान साहित्य का सृजन करके ।

बिहारी की कल्पनाशक्ति ने तीनों ही रूपों मे पर्याप्त सफलता प्राप्त की है—

(i) **विचारों को आकर्षक रूप प्रदान करना**—अनुदार दाता कुछ देता है तो बदले मे इज्जत ले लेता है इस शुष्क विचार को आकर्षक ढंग से प्रतिपादित करने के लिए बिहारी ने अपनी कल्पना-शक्ति का उपयोग करते हुए निम्नांकित दोहा गढ़ डाला—

नहिं पावसु, ऋतुराज यह, तजि, तरवर, चित भूल ।
अपतु भएं बिनु पाइ है क्यौं नवदल, फल, फूल ॥[१२]

इसी प्रकार राजा जयसिंह का अपनी नव-विवाहिता रानी के मोह पाश में बंधकर राजकार्यों मे विरक्त हो जाने के विचार को आकर्षक रूप प्रदान करने के लिए बिहारी की कल्पनाशक्ति राजा जयसिंह और उनकी रानी के स्थान पर अली और कली को प्रतिष्ठित कर देती है—

नहिं परागु, नहिं मधुर मधु, नहिं बिकासु इहिं काल ।
अली, कली ही सौं बंध्यौं, आगे कौन हवाल ॥[१३]

---

१०. बिहारी रत्नाकर, दो० सं० ४७६ ।
११. बिहारी सतसई : वैज्ञानिक समीक्षा ; डा० गुप्त, पृ० ३५ ।
१२. बिहारी रत्नाकर, दो० स० ४७४ ।
१३. वही, दो० स० ३८ ।

विचारों को आकर्षक रूप प्रदान करने में बिहारी की कल्पनाशक्ति ने सतसई के ऐसे अनेक दोहों में अपना कमाल दिखाया है, यथा—

(क) स्वारथु सुकृतु न, श्रम वृथा, देखि, विहंग, विचारि।
बाज, परायें पानि परि, तूं पच्छीनु न मारि ॥[१४]

(ख) सरस कुसुम मंडरातु अलि, न झुकि झपटि लपटातु।
दरसत अति सुकुमारु तनु, परसत मन न पत्यातु ॥[१५]

(ग) जिन दिन देखे वे कुसुम, गई सुबीति बहार।
अब, अलि, रही गुलाब में, अपत, कंटीली डार ॥[१६]

(ii) भावों को अनुभूति गम्य अथवा आकर्षक बनाना—(भावों की सफल अभिव्यक्ति के लिए)

जब भाषा स्वय सपूर्ण भाव सवेदन को सप्रेषित करने मे असमर्थ हो जाती है *तो ऐसी स्थिति मे कवि विरोधी चित्रो की कल्पना करता है। ऐसे विम्ब जो सहज* ग्राह्य नही हैं, उन्हें भी वह सहज ग्राह्य बना देता है तथा उनसे छनकर जो सौन्दर्य आता है वह अधिक सवेद्य एव उदात्त होता है—

जटित नीलमनि जगमगति सींक सुहाई नांक।
मनौ अली चंपक-कली बसि रसु लेतु निसांक ॥[१७]

इसी प्रकार 'प्रिय की दी हुई अगूठी नायिका को बहुत ही प्यारी लगती है' इस भाव को बोधगम्य रूप प्रदान करने के लिये बिहारी ने अपनी कल्पनाशक्ति का उपयोग निम्नांकित दोहे मे किया है—

छला छबीले लाल को नवल नेह लहि नारि।
चूमति, चाहति, लाइ उर पहिरति, धरति उतारि ॥[१८]

इसी प्रकार एक अन्य स्थान पर बिहारी 'प्रिय की पत्रिका प्राप्ति को' अपनी कल्पनाशक्ति से बिम्बात्मक रूप प्रदान करते हुए बोध गम्य बना देते है—

---

१४. वही, दो० स० ३००।
१५. वही, दो० स० ३६६।
१६. वही, दो० स० २५५।
१७. वही, दो० स० १४३।
१८. वही, दो० सं० १२३।

कर लै, चूमि, चढ़ाइ सिर, उर लगाइ, भुज भेंटि।
लहि पाती पिय की लखति, बांचति, धरति समेटि ॥[१९]

बिहारी ने अनेक दोहो मे अपने भावो को पुष्ट करने के लिए लोक विश्वास पर आधारित कल्पनात्मक बिम्ब भी प्रस्तुत किये हैं, यथा—

तजि तीरथ, हरि राधिका-तन दुति करि अनुरागु।
जिहिं ब्रज-केलि-निकुंज-मग पग पग होतु प्रयागु ॥[२०]

यहाँ त्रिवेणी संगम का बिम्ब प्रथम पंक्ति मे व्यक्त भावना को अधिक संवेद्य बना देता है। इसी प्रकार उन्होंने नायिकाओ की विभिन्न चेष्टाओं एव मुद्राओ के भी मनमोहक चित्र प्रस्तुत करके उन्हे अनुभूति गम्य बना दिया है, यथा—

भौंहनु त्रासति, मुँह नटति, आंखिनु सौं लपटाति।
ऐंचि छुड़ावति कर, इंची आगैं आवति जाति ॥[२१]

\+ + +

कहत, नटत, रीझत, खिझत, मिलत, खिलत, लजियात।
भरे भौन मैं करत हैं, नैननु हीं सब बात ॥[२२]

बिहारी की कल्पनाशक्ति का अत्यन्त प्रखर एवं प्रशस्त रूप उनके हास्य एवं व्यग्य सम्बन्धित दोहो मे भी मिलता है—

हास्य

कन दैबौ सौंप्यौ ससुर, बहू थुरहथी जानि।
रूप-रहचटैं लगि लग्यौ मांगन सबु जगु आनि ॥[२३]

उपहास

कर लै, सूंघि, सराहि हूं रहे सबै गहि मौनु।
गंधी अंध, गुलाल कौ गवईं गाहकु कौनु ॥[२४]

विनोद

बतरस लालच लाल की मुरली धरी लुकाइ।
सौंह करै भौंहनु हंसै, दैन कहै नटि जाइ ॥[२५]

---

१९. बिहारी रत्नाकर, दो० स० ६३५।
२०. वही, दो० सं० २०१।
२१. वही, दो० सं० ६८३।
२२. वही, दो० सं० ३२।
२३. वही, दो० सं० २६५।
२४. वही, दो० ६२४।
२५. वही, दो० सं० ४७२।

व्यंग्य

दिन दसु आदरु पाइ कै, करि लै आपु बखानु।
जौ लगि काग ! सराध पखु, तौ लगि तौ सनमानु ॥[२६]
मरतु प्यास पिंजरा परयौ सुआ समै कै फेर।
आदरु दै दै बोलियतु, बाइसु बलि की बेर ॥[२७]

+ + +

(iii) कल्पना-प्रधान साहित्य का सर्जन—कल्पना प्रधान साहित्य मे कल्पना न तो भावो से प्रेरित होती है और न ही तथ्य एव विचारो पर आश्रित; उसमे कल्पना का लक्ष्य किसी विशेष भाव या विचार को प्रस्तुत करना तो होता है किन्तु वह इनके प्रभाव एव बन्धन से मुक्त होती है। कल्पना प्रधान साहित्य के तीन प्रमुख भेद किए जाते हैं—(१) रूप प्रधान, (२) घटना प्रधान (३) अप्रस्तुत पक्ष प्रधान।

(१) रूप प्रधान कल्पनात्मक साहित्य का सृजन—रूप प्रधान कल्पनात्मक साहित्य (कल्पना प्रधान) मे बिम्बात्मकता की प्रवृत्ति प्रधान होती है अत. कवि अपनी कल्पना शक्ति द्वारा प्रस्तुत विषय के रूप चित्रण मे रूप, रग, आकार आदि का वर्णन करता है जिससे इसमे बिम्बों की बाढ आ जाती है, किन्तु अनुभूति के अभाव मे ये बिम्ब काव्यात्मक आकर्षण उत्पन्न करने मे असमर्थ रहते हैं। बिहारी की कल्पना-शक्ति ने उन से ऐसे अनेक दोहों का सर्जन कराया है, यथा—

भाल लाल बेंदी, ललन, आखत रहे बिराजि।
इंदुकला कुज मैं बसी मनौ राहु-भय भाजि ॥[२८]

(२) घटना प्रधान कल्पनात्मक साहित्य—घटनाओ एवं क्रियाकलापो के निरूपण मे जब साहित्यकार अनुभूति एव विचार की अवहेलना करते हुए कोरी कल्पना का आश्रय ग्रहण करता है तो उसका वर्णन प्राय अत्युक्ति एव अस्वाभाविकता की सीमा पार कर जाता है। बिहारी की कल्पनाशक्ति भी जब साहित्य-सर्जन के लिए अकेली ही निकल पडती है तो प्राय रास्ता भूल जाती है। बिहारी के निम्नाकित दोहे उनकी इसी भटकी हुई कल्पनाशक्ति की देन हैं—

इत आवति चलि जाति उत चली, छसातक हाथ।
चढ़ी हिंडोरैं सैं रहै, लगी उसासनु साथ ॥[२९]

+ + +

---

२६. बिहारी-रत्नाकर, दो० स० ४३४।
२७. वही दो० स० ४३५।
२८. वही, दो० स० ६६०।
२९ वही, दो० स० ३१७।

सुनत पथिक-मुँह, माह निसि, चलति लुवै उहि गाम।
बिनु बूझे, बिनु ही कहे, जियति बिचारी बाम ॥[30]

+ + +

आड़े दै आल बसन, जाड़े हूं की राति।
साहसु कै सनेह बस, सखी सबै ढ़िग जाति ॥[31]

कहने की आवश्यकता नहीं कि बिहारी के इस प्रकार के दोहे आकर्षक न होकर हास्यास्पद बनकर ही रह गए हैं।

(३) अप्रस्तुत पक्ष प्रधान—साहित्य (कल्पना प्रधान)—जब साहित्यकार शैली पक्ष को अधिक प्रभावशाली बनाने का प्रयास करता है तो उसमें अप्रस्तुत पक्ष का समावेश हो जाता है। किन्तु बिहारी के अनेक दोहों में अप्रस्तुत पक्ष इस सीमा तक प्रधान हो जाता है कि उसके सामने प्रस्तुत पक्ष गौण रह जाता है। उदाहरण के लिए निम्नांकित दोहा द्रष्टव्य है—

कहलाने एकत बसत अहि मयूर, मृग बाघ।
जगतु तपोवन सौ कियो दीरघ-दाघ निदाघ ॥[32]

यहाँ पर प्रस्तुत में अहि-मयूर, मृग बाघ का एक स्थान बसना वर्णित है किन्तु दूसरी पंक्ति में मानस में बना वह चित्र सहसा धूमिल हो जाता है और जगत तपोवन प्रधान हो जाता है। अप्रस्तुत का लक्ष्य प्रस्तुत की अनुभूति में योग देना होता है जबकि यहाँ वह उसमें बाधक सिद्ध होता है।

अप्रस्तुत पक्ष की प्रधानता वाले कुछ अन्य दोहे भी द्रष्टव्य हैं—

(क) याकै उर औरै कछू, लगी बिरह की लाइ।
पजरै नीर गुलाब कै, पिय की बात बुझाई ॥[33]

(ख) लाल, तुम्हारे बिरह की अगनि अनूप, अपार।
सरसै बरसै नीर हूं, झर हूं मिटै न झार ॥[34]

---

३०. बिहारी रत्नाकर, दो० सं० २८५।
३१. वही, दो० सं० २८३।
३२. वही, दो० सं० ४८६।
३३. वही, दो० सं० ४८।
३४ वही, दो० सं० ३६।

(ग) धुरवा होहिं न, अलि, उठै धुवां धरनि चहुंकोद ।
जारत आवत जगत कौं, पावस-प्रथम पयोद ।।[३५]

इस प्रकार हम देखते हैं कि बिहारी में नूतन प्रसंगों की उद्‌भावना एवं उनके आकर्षक ढंग से प्रस्तुतीकरण की अद्‌भुत कल्पनाशक्ति थी । यह अलग बात है कि अनुभूतियों के अभाव में एवं चमत्कार प्रदर्शन की लालसा में उनके अनेक दोहे शृंगार रस के स्थान पर हास्य एवं विस्मय के द्योतक बन गये हैं । अन्ततः हम डा० गणपतिचन्द्र गुप्त के शब्दों में कह सकते हैं कि 'बिहारी में सर्जनात्मक कल्पनाशक्ति की न्यूनता नहीं अपितु अधिकता ही कहीं-कहीं दोष बन गई ।'[३६]

२. बिहारी की स्मरण-शक्ति (स्मृति)

विलियम जेम्स स्मृति की परिभाषा देते हुए कहते हैं कि "स्मृति चेतना से भ्रष्ट हो जाने के पश्चात् मन की किसी अतीत दशा का ज्ञान है या स्मृति किसी घटना या तथ्य का ज्ञान है जिसके बारे में हम मध्यवर्ती काल में सोच भी नहीं रहे थे, तथा साथ ही यह अतिरिक्त चेतना भी है कि हमने पहले उसे सोचा या अनुभव किया है ।"[३७] किसी विराट अनुभव का प्रत्याह्वान करना, जो मन में धारणा किया जा चुका है, स्मृति है । स्मृति में धारणा और प्रत्याह्वान सन्निहित रहते है ।

प्राय : सभी विद्वान[३८] मानते हैं कि कल्पना स्मृति पर आश्रित होती है । कल्पना में अतीत के अनुभवों को स्मरण किया जाता है तथा उन्हे नये ढग से क्रमबद्ध किया जाता है । यदि गत अनुभव के तत्त्वों का स्मरण न हो तो नये नमूनों की कल्पना भी नहीं हो सकती । कल्पना नवीन सामग्री की सृष्टि नहीं कर सकती । एक जन्मान्ध व्यक्ति कदापि रंगों की कल्पना नहीं कर सकता । एक जन्म बधिर व्यक्ति कभी ध्वनियों की कल्पना नहीं कर सकता । अतः कल्पना के लिए स्मृति आवश्यक है ।[३९]

---

३५. बिहारी रत्नाकर, दो० स० ५४६ ।
३६. बिहारी सतसई . वै० समीक्षा, पृष्ठ ३६ ।
३७. मनोविज्ञान : यदुनाथ सिन्हा पृ० १५२ ।
३८. मनोविज्ञान, यदुनाथ सिन्हा, पृ० १६० ।
३९. वही, पृष्ठ १६० ।

हम पीछे देख चुके हैं कि बिहारी की कल्पना शक्ति अत्यन्त तीव्र थी तथा साहित्य-सर्जन में सौन्दर्योन्मुखी कलात्मक कल्पना शक्ति जो कार्य कर सकती है वे सभी कार्य बिहारी की कल्पना-शक्ति ने सफलतापूर्वक किये हैं। चूँकि कल्पना शक्ति स्मृति पर आश्रित होती है अत. हम सहज ही अनुमान लगा सकते हैं कि बिहारी तीव्र स्मरण शक्ति या स्मृति के धनी थे।

३. बिहारी की तर्क शक्ति

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक वुडवर्थ के अनुसार तर्क को मानसिक अनुसंधान (Mental Exploration) और कल्पना को मानसिक प्रहस्तन (Mental Manipulation) कहा जा सकता है।[४०] इससे अभिप्राय यह हुआ कि तर्क शक्ति का कार्य मानसिक अनुसंधान एव प्रत्यक्षीकृत या स्मृत सामग्री के मध्य नये सम्बन्ध स्थापित करना है। यही कारण है कि अधिकतर मनोवैज्ञानिक तर्क-शक्ति को समस्या का समाधान करनेवाली उच्च विचारात्मक प्रक्रिया मानते हैं।[४१] प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक मन (Munn) के शब्दो मे हम तर्क की परिभाषा इस प्रकार कर सकते हैं—'तर्क शक्ति से अभिप्राय अतीत के अनुभवो के ऐसे योग से है जिससे किसी ऐसी समस्या का समाधान हो जाये जो कि पिछले हलो की मात्र पुनरावृत्ति से हल न हो सकी।'[४२]

तर्क के तीन भेद माने जाते है[४३]—

(क) आगमन तर्क (Inductive Reasoning)
(ख) उपमान तर्क (Analogical Reasoning)
(ग) निगमन तर्क (Deductive Reasoning)

आगमन तर्क] मे विशेष निरीक्षित तथ्यो से एक सामान्य सिद्धान्त का प्रतिपादन किया जाता है। उपमान मे विशेष निरीक्षित तथ्यो से सादृश्य के आधार

---

४०. मनोविज्ञान ; यदुनाथ सिन्हा, पृ० २१५।
४१. सामान्य मनोविज्ञान ; रामवावू, पृ० ३२५।
42. Munn : "Reasoning is combining of past experiences in order to solve a problem which can not be solved by mere reproduction of earlier solutions."
—सामान्य मनोविज्ञान ; डा० रामवावू गुप्त, पृ० ३२५ से उद्धृत।
४३. मनोविज्ञान : यदुनाथ सिन्हा, पृ० २१६।

पर एक नया विशेष तथ्य निकाला जाता है। निगमन में किसी सामान्य सिद्धान्त को परिस्थिति-विशेष पर लागू करके उस परिस्थिति-विशेष के औचित्य का प्रतिपादन करते हैं। बिहारी सतसई में इस बात के पर्याप्त प्रमाण मिलते हैं कि बिहारी की तर्कशक्ति तीनों ही रूपों में समुचित रूप से विकसित थी।

(क) बिहारी की आगमन तर्कशक्ति—मनोविज्ञान के अनुसार आगमन तर्कशक्ति वह है जिसमें नाना प्रकार के दृष्टान्तों द्वारा किसी सामान्य नियम पर पहुँचा जाता है।[४४] उदाहरण के लिए हम देखते हैं राम मर गया, श्याम मर गया, राम-श्याम के समस्त भाई मर गए। हमारा ज्ञान हमें बताता है कि राम मनुष्य था, श्याम मनुष्य था, राम-श्याम के समस्त भाई मनुष्य थे। अतः इन दो तथ्यों के आधार पर हम एक सामान्य नियम की स्थापना कर सकते हैं कि "मनुष्य मरणशील है।" तथ्यों से इस प्रकार निष्कर्ष पर पहुँचने की समस्त प्रक्रिया को आगमन तर्क कहते हैं।

बिहारी सतसई में ऐसे अनेक दोहे विद्यमान हैं जिनके आधार पर हम बिहारी का आगमन तर्कशक्ति का अनुमान लगा सकते हैं। उदाहरण के लिए हम बिहारी सतसई का यह दोहा ले सकते हैं—

सोहतु संगु समान सौं, यहै कहै सबु लोगु।
पान-पीक ओठनु बनै, काजर नैननु जोगु॥[४५]

यहाँ प्रयुक्त तथ्यों को हम इस प्रकार लिख सकते हैं—

(क) चूंकि पान की पीक भी लाल है तथा ओष्ठ भी लाल हैं
अतः पान की पीक से ओष्ठ शोभित होते हैं। —तथ्य (क)

(ख) चूंकि काजल भी काला है एवं नयन भी काले हैं
अतः काजल नयनों में सुशोभित होता है। —तथ्य (ख)

इन दो तथ्यों (क) और (ख) के आधार पर बिहारी यह सामान्य नियम प्रतिपादित करते हैं कि 'प्रत्येक व्यक्ति अपने समान मनुष्य या पदार्थ के संग से ही सुशोभित होता है।'

इसी प्रकार एक अन्य दोहा द्रष्टव्य है—

सबै सुहाएई लगै बसै सुहाऐं ठाम।
गौरें मुँह बेंदी लसै, अरुन, पीत, सित, स्याम॥[४६]

---

४४. सामान्य मनोविज्ञान, रामबाबू, पृ० ३२६।
४५. बिहारी-रत्नाकर, दो० स० २६७।
४६. बिहारी-रत्नाकर, दो० स० २७१।

यहाँ प्रयुक्त तथ्य इस प्रकार हैं—

(क) गोरे (सुन्दर) मुख पर अरुण रंग की बिंदी अच्छी लगती है ।
(ख) गोरे मुख पर पीले रंग की बिन्दी अच्छी लगती है ।
(ग) गोरे मुख पर सफेद रंग की बिन्दी अच्छी लगती है ।
(घ) गोरे मुख पर काले रंग की बिंदी अच्छी लगती है ।

इन चार तथ्यों (क), (ख), (ग) तथा (घ) के आधार पर बिहारी निष्कर्ष रूप मे यह सामान्य सिद्धान्त प्रतिपादित कर देते है कि 'सुहावने स्थान पर वसने से सभी सुहावने ही लगते हैं ।'

आगमन तर्क का मुख्य कार्य स्थूल तथ्यों के द्वारा सूक्ष्म सत्य का प्रतिपादन करना होता है । बिहारी भी अद्वैतवादियो की इस धारणा कि 'जगत असत्य है' को प्रतिपादित करने के लिए तर्क देते हैं कि जिस प्रकार दर्पण की यह विशेषता है कि एक ही व्यक्ति के अनेक प्रतिबिम्ब प्रस्तुत करके वह एक ही व्यक्ति को अनेक व्यक्तियों के रूप में भासित कर देता है उसी प्रकार यह जगत भी वास्तव मे उस एक परमात्मा का अपार प्रतिबिम्ब है ।[४७]

हम जानते है कि कई इस प्रकार के चश्मे (लैंन्स) होते हैं जिनके लगाने से छोटी वस्तु वडी नजर आने लगती है। इसी तथ्य के आधार पर बिहारी इस धारणा को सिद्ध करने में सफल हो जाते हैं कि लोभी व्यक्ति घर-घर माँगता फिरता है बिना यह विचारे कि यह व्यक्ति याचना के योग्य है भी या नही ।[४८]

इसी प्रकार बिहारी सतसई मे और भी अनेक दोहो मे बिहारी की आगमन तर्क शक्ति का परिचय मिलता है जिनमे से कुछ सक्षेप मे इस प्रकार द्रष्टव्य हैं—

(क) तथ्य—चूहे के चमड़े से (जो कि आकार में छोटा होता है) बड़ा नगाड़ा नहीं मढ़ा जा सकता ।

निष्कर्ष—छोटे मनुष्यों से बड़ों के काम नहीं निकल सकते ।[४६]

---

४७. मैं समुझ्यौ निरधार, यह जगु कांचो काच सौ ।
एकै रूपु अपार प्रतिबिंबित लखियतु जहाँ ॥
—बिहारी रत्नाकर, दो० सं० १८१ ।

४८. घर घर डोलत दीन ह्वै, जनु जनु जाचतु जाइ ।
दियैं लोभ-चसमा चखनु लघु पुनि बड़ौ लखाइ ॥
—वही, दो० सं० १५१ ।

४६. कैसे छोटे नरनु तैं सरत बडनु के काम ।
मढ्यौ दमामौ जातु क्यौं, कहि चूहे कैं चाम ॥
—वही, दो० सं० १३१ ।

(ख) तथ्य—धतूरे को कनक (सोना) कहा जाता है लेकिन उससे गहने नहीं गढ़े जा सकते।

निष्कर्ष—बिना गुणों के केवल बड़ाई या प्रशंसा सूचक नाम रख लेने से कोई व्यक्ति बड़ा नहीं हो जाता।[५०]

(ग) तथ्य—हींग कपूर के साथ रख देने से भी अपनी दुर्गन्ध को त्याग कर सुगन्ध नहीं देती।

निष्कर्ष—कुकर्मी व्यक्ति अच्छी संगत में पड़कर भी अच्छी बुद्धि नहीं ले सकता।[५१]

(घ) तथ्य—'अर्क' कहलाने वाला तरु अर्क (सूर्य) के समान प्रकाश नहीं दे सकता।

निष्कर्ष—गुणवान कहलाने वाला गुणहीन व्यक्ति, गुणवान नहीं हो सकता।[५२]

(२) बिहारी की उपमान तर्कशक्ति—मनोविज्ञान के अनुसार जब विशेष निरीक्षित तथ्यों से सादृश्य के आधार पर एक नया विशेष तथ्य निकाला जाता है तो उसे उपमान तर्क शक्ति कहते हैं।[५३] इस प्रकार की तर्कप्रक्रिया में एक तथ्य की दूसरे तथ्य से तुलना कर एक की दूसरे से उपमा दी जाती है तथा निष्कर्ष रूप में मुख्यत किसी नये सिद्धान्त का प्रतिपादन नही होता।

बिहारी-सतसई के अध्ययन के आधार पर हम कह सकते है कि बिहारी में इस प्रकार की तर्क-शक्ति विशेष रूप से प्रबल थी। उदाहरण के लिए बिहारी सतसई से निम्नांकित दोहा द्रष्टव्य है—

५०.　बड़े न हूजै गुननु बिनु बिरद बडाइ पाइ।
कहत धतूरे सौ कनकु, गहनौ गढ्यौ न जाइ॥
—वही, दो० स० १६१।

५१　संगति सुमति न पावही परे कुमति कै धंध।
राखौ मेलि कपूर मैं, हींग न होइ सुगन्ध॥
—बिहारी रत्नाकार, दो० सं० २२८।

५२.　गुनी गुनी सबकै कहैं निगुनी गुनी न होतु।
सुन्यौ कहूँ तरु अरक तैं अरक-समानु उदोतु॥
—वही, दो० स० ३५१।

५३. सामान्य मनोविज्ञान ; यदुनाथ सिन्हा, पृ० २१६।

बहुत सर्व छवि कमल से, मो मत नैन पखानु।
नतरुक कत इन विय लगत उपजतु बिरह-कृसानु ॥५४

यहाँ पर बिहारी एक प्रेमी के नयनो का दूसरे के नयनों से टकरा जाने की क्रिया को दो पत्थरों के परस्पर टकरा जाने की क्रिया की उपमा देते हुए, सादृश्य के आधार पर यह निष्कर्ष निकालते हैं कि चूंकि नैनो के टकराने से विरह की आग उत्पन्न होती है तथा इसी प्रकार पत्थरों के परस्पर टकरा जाने से भी आग ही उत्पन्न होती है अतः नयन कमल के समान न होकर पत्थर के समान हैं।

इसी प्रकार मनुष्य के गुणो की तुलना केश और उरोज मे करते हुए बिहारी यह निष्कर्ष निकालते हैं कि वैभव वृद्धि से उत्तम कोटि के मनुष्य तो झुकेंगे जबकि निम्न कोटि के मनुष्य तनेंगे।[५५] स्वर्ण की धतूरे से तुलना करते हुए बिहारी यह मत प्रतिपादित करते हैं कि स्वर्ण धतूरे से सौ गुना अधिक नशीला पदार्थ है क्योंकि धतूरे के तो खाने से मनुष्य पागल होता है जबकि स्वर्ण के तो पाने मात्र से ही ऐसा हो जाता है।[५६]

इसी प्रकार हरि की शोभा मे नायिका के नेत्रो की आसक्ति को जल घड़ी से उपमा देते हुए कवि कहता है कि जिस प्रकार जल घडी पानी मे ढलकती डूबती-उतराती रहती है उसी प्रकार नायिका के नेत्र भी हरि के सौन्दर्य की छवि में डूबते-उतरते रहते हैं।[५७]

इसी प्रकार एक अन्य दोहे मे बिहारी दुर्जन व्यक्ति को पैरों मे गिरने (झुकना) की क्रिया की, काटो की पैरो के नीचे आने की क्रिया से तुलना करते हुए सादृश्य के आधार पर यह सभावना व्यक्त करते हैं कि जिस प्रकार

---

५४. बिहारी रत्नाकर, दो० सं० ११८।

५५. सपति केस, सुदेश नर नवत, दुहुनि इक बानि।
विभव सतर कुच, नीच नर नरम विभव की हानि ॥
—बिहारी रत्नाकर, दो०स० ११७।

५६. कनकु कतक तैं सौगुनौ मादकता अधिकाई।
उहिं खाएँ बौराइ, इहिं पाएँ ही बौराइ ॥
—वही, दो० सं० १९२।

५७. हरि-छवि-जल जब तैं परे, तब तैं छिनु बिछुरैं न।
भरत ढरत, बूड़त तरत रहत घरी लौं नैन ॥
—वही, दो० सं० ३०७।

पैरों के नीचे आकर भी कांटा व्यक्ति के प्राण ले सकता है उसी प्रकार पैरों में पडा दुर्जन व्यक्ति भी मौका मिलने पर हानि पहुँचा सकता है।[५८]

ईश्वर की पतग से उपमा देकर बिहारी यह प्रतिपादित करते हैं कि जिस प्रकार पतग की डोरी मे ढील देने पर (पतग की डोरी का विस्तार करने से) पतग अधिक दूर जाती है उसी प्रकार प्रभु भी गुणो के विस्तार होने पर पीठ दिखा कर दूर भाग जाते हैं जबकि गुणरहित होने पर निकट आ प्रकट होते हैं।[५६]

एक अन्य दोहे मे बिहारी स्नेह को, सेंहुड के रस को उपमा देते हुए सादृश्य के आधार पर यह तथ्य प्रतिपादित करते है कि जिस प्रकार सेंहुड के रस से लिखे अक्षर ताप मिलने पर प्रकट हो जाते हैं उसी प्रकार हृदय मे छुपा स्नेह भी विरह मे प्रकट हो जाता है।[६०]

बिहारी की नायिका अपने नयनो को मुंहजोर घोडे से उपमा देती हुई यह तथ्य प्रतिपादित करती है कि जिस प्रकार मुंहजोर घोड़ा लगाम खीचने पर भी नही रुकता उसी प्रकार मेरे ये नेत्र लज्जा का आदेश नही मानते अर्थात् शर्म नहीं करते।[६१]

बिहारी सतसई मे ही एक अन्य दोहे मे नायिका के शरीर की विलक्षणता को स्पष्ट करने के लिए बिहारी उसे दर्पण की उपमा से विभूषित करते हुए यह तर्क देते है कि जिस प्रकार दो दर्पणो के आमने सामने रखने पर उनके मध्य की वस्तु, बिम्ब प्रतिबिम्ब के कारण असख्य दिखाई देती है, उसी

---

५८. न ए बिससियहि लखि नए दुरजन दुसह-सुभाइ।
आटैं परि प्राननु हरत काटैं लौं लगि पाइ॥
—बिहारी रत्नाकर, दो० ३११।

५६. दूरि भजत प्रभु पीठि दै गुन-बिस्तारन काल।
प्रगटत निर्गुन निकट रहि चग-रग भूपाल॥
—वही, दो० स० ४२८।

६०. छतौ नेहु कागर हियैं, भई लखाई न टाकु।
बिरह-तचैं उघरयौ सु अब सेंहुड कैसो आकु॥
—वही, दो० स० ४५७।

६१. लाज लगाम न मानही, नैना मो बस नाहि।
ए मुंहजोर तुरग ज्यो ऐंचत हूँ चलि जाहि॥
—वही, दो० स० ६१०।

प्रकार नायिका के आभूषण विभिन्न अंगो से प्रतिबिम्बित होकर असंख्य दिखाई पड़ते हैं।[६२]

(३) बिहारी की निगमन तर्क शक्ति—निगमन में सामान्य सिद्धान्त को परिस्थिति विशेष पर लागू करके उस परिस्थिति विशेष का औचित्य सिद्ध किया जाता है। यह आगमन तर्क शक्ति के सर्वथा विपरीत है, जहाँ आगमन में दैनिक जीवन में अनुभूत तथ्यों के आधार पर एक सामान्य नियम का आविष्कार किया जाता है वहाँ निगमन में एक सामान्य नियम की सहायता से दैनिक जीवन के विभिन्न कार्यों के औचित्य को सिद्ध किया जाता है। आगमन जहाँ स्थूल से सूक्ष्म का प्रतिपादन करता है वहाँ निगमन तर्क सूक्ष्म सत्य से स्थूल तथ्य का प्रतिपादन करता है।

बिहारी सतसई में ऐसे दोहों की भी कमी नहीं जिनसे हम बिहारी की निगमन तर्क शक्ति का अनुमान लगा सकते हैं। उदाहरण के लिए निम्नांकित दोहा द्रष्टव्य है—

दुसह दुराज प्रजानु कौं क्यों न बढ़ै दुख-दंदु।
अधिक अंधेरौ जग करत मिलि मावस रवि-चंदु ॥[६३]

यहाँ ज्योतिष शास्त्र द्वारा प्रतिपादित इस सत्य के आधार पर कि अमावस को सूर्य चन्द्र मिलकर जगत में अंधकार की वृद्धि कर देते हैं बिहारी इस मत का प्रतिपादन करते हैं कि एक साथ दो व्यक्तियों का शासन हो जाने पर प्रजा के दुःख दर्द बढ़ जाते हैं।

इसी प्रकार एक अन्य दोहा द्रष्टव्य है—

संगति दोषु लगै सबनु, कहे ति सांचे बैन।
कुटिल बंक भ्रुव-संग भए कुटिल, बंकगति नैन ॥[६४]

यहाँ इस सर्वमान्य सत्य के आधार पर कि संगति के दोष से कोई भी नहीं बच सकता, बिहारी भौंहों की कुटिल भंगिमा का साथ मिलने पर नेत्रों की गति के वक्र एवं कुटिल होने के औचित्य को सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं, अतः यह भी बिहारी की निगमन तर्क शक्ति का परिचायक है।

---

६२. अंग-अंग प्रतिबिंब परि दरपन सै सब गात।
दुहरे, तिहरे, चौहरे भूपन जाने जात॥
—बिहारी रत्नाकर, दो० सं० ६८०।

६३. वही, दो० सं० ३५७।

६४. बिहारी रत्नाकर, दोहा सं० ३०३।

इसी प्रकार निगमन तर्क का एक उद्देश्य किसी शंका का सर्वमान्य तथ्य द्वारा समाधान करना भी होता है। बिहारी सतसई की नायिका जब विषाद में डूबी होती है तो उसकी सखी इस तर्क के आधार पर कि एक बार अंगूर चख लेने के बाद जीभ निबौरी का स्वाद नहीं ले सकती, उसे यह सांत्वना देती है कि इसी प्रकार तेरे सौन्दर्य से परिचित व्यक्ति किसी अन्य के वश में नहीं हो सकता।[६५]

इसी प्रकार बिहारी सतसई की नायिका इस सर्वमान्य तथ्य के द्वारा कि पतंग *कितनी भी दूर क्यों न चली जाये तो भी उसकी डोरी उड़ाने वाले के हाथ में* रहती है, नायक को यह विश्वास दिलाती है कि इसी प्रकार वह भी उससे बिछुड़ी है तो क्या हुआ ? उसका मन तो नायक के मन के साथ बंधा रहेगा।[६६]

४. बिहारी की ज्ञान-शक्ति

बिहारी सतसई के आधार पर हम कह सकते हैं कि बिहारी का ज्ञान बहुत बढ़ा-चढ़ा था। उन्होंने ज्योतिष-शास्त्र, आयुर्वेद, पौराणिक ग्रन्थों, काव्य-शास्त्र आदि का गहराई से अध्ययन करके उनमें दक्षता प्राप्त करने के साथ-साथ गणित कृषि, राजनीति, धर्म, दर्शन, इत्यादि विषयों के कुछ प्रमुख सिद्धान्तों के संबन्ध में भी सामान्य जानकारी प्राप्त की थी।

(१) ज्योतिष शास्त्र का ज्ञान—सतसई में अनेक दोहों में बिहारी ने अपने मत के प्रतिपादन के लिए ज्योतिष शास्त्र के अनेक जटिल सिद्धान्तों का आश्रय ग्रहण किया है, जिससे पता चलता है कि बिहारी को ज्योतिष शास्त्र में विशेष निपुणता प्राप्त थी। उदाहरण के लिए जातक संग्रह के राजयोग प्रकरण में लिखा है *कि यदि शनिश्चर तुला, धनु या मीन लग्न में पड़ा हो तो वह स्वयं राजा* होता है तथा राजवंश को चलाने वाला होता है। इस सिद्धान्त के आधार पर बिहारी एक दोहे में वर्णन करते हैं कि काजल रूपी शनि से युक्त नेत्र रूपी मीन

---

६५ तो रस राच्यौ आन-बस कह्यौ कुटिल-मति, क्रूर।
जीभ निबौरी क्यों लगै, बौरी, चाखि अंगूर॥
—बिहारी रत्नाकर, दो० सं० १६३।

६६ कहा भयौ, जौ बीछुरे, मो मनु तो मन-साथ।
उड़ी जाउ कित हूँ, तऊ गुड़ी उड़ाइक हाथ॥
—वही, दो०सं० ५७।

लगन में स्नेह रूपी बालक का जन्म हुआ है, अतः यह स्नेह रूपी बालक नायिका सारे शरीर-रूपी देश पर शासन करेगा।[६७]

इसी प्रकार ज्योतिष का एक अन्य सिद्धान्त है कि यदि मंगल, चन्द्रमा और बृहस्पति एक ही राशि पर पड़े हो तो इतनी वर्षा होती है कि संसार जलमय हो जाता है। इस सिद्धान्त के आधार पर बिहारी भी एक दोहे में मस्तक पर लगी लाल बिन्दी को मंगल, मुख को चन्द्रमा और केसर के पीले तिलक को बृहस्पति मानते हुए कहते हैं कि ये तीनों एक ही नारी में विराजमान हैं अतएव नेत्ररूपी संसार रसमय, प्रेममय या जलमय हो गया है।[६८]

इसी प्रकार ज्योतिष शास्त्र का एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त यह भी है कि चन्द्र के साथ यदि कोई सौम्य ग्रह हो और वह केन्द्र में ग्यारहवें स्थान पर अथवा त्रिकोण में विद्यमान हो तो धनागम, राजमान, अथवा सन्तान प्राप्ति इत्यादि का सुख प्राप्त होता है। बिहारी भी इस सिद्धान्त का आश्रय ग्रहण करते कहते हैं कि स्त्री के मुख पर हीरा जड़ी बेंदी देखकर देखने वालों के आनन्द बढ़ते हैं मानो पूर्ण चन्द्रमा ने सुत-स्नेह से बुध को अपनी गोद में ले लिया हो।[६९]

कुछ अन्य दोहों में मंगल में चन्द्र की अन्तर्दशा[७०] का, किसी तिथि

---

६७. सनि कज्जल-चख-झख लगन उपज्यौ सुदिन सनेहु।
क्यों न नृपति ह्वै, भोगवै लहि सुदेसु सबु देहु॥
—बिहारी रत्नाकर, दो० सं० ५।

६८. मंगलु बिन्दु सुरंगु, मुखु ससि केसरि-आड़ गुरु।
इक नारी लहि संगु, रसमय किय लोचन-जगत॥
—बिहारी, दो० सं० ४२।

६९. तिय मुख लखि हीरा-जरि बेंदी बढ़ै विनोद।
सुत-सनेह मानौ लियौ, बिधु पूरन बुधु गोद॥
—बिहारी रत्नाकर, दो० सं० ७०७।

७०. भाल लाल बेंदी, ललन, आखत रहे बिराजि।
इन्दुकला कुज मैं बसी मनौ राहु-भय भाजि॥
—वही, दो० सं० ६६०।

की हानि होने का[७१], संक्रान्ति[७२] आदि का सुन्दर वर्णन किया गया है जो कि विहारी की ज्योतिष विद्या में निपुणता का परिचायक है।

(२) **आयुर्वेद का ज्ञान**—बिहारी सतसई में ऐसे अनेक दोहे विद्यमान हैं जिनसे पता चलता है कि उन्हें आयुर्वेद के अनेक प्रसिद्ध सिद्धांतों का भी ज्ञान था। आयुर्वेद में शरीर शोधन के लिए जो पंचकर्म नियत किए गए हैं उनमें से स्नेहन भी एक है। इसमें रोगी को तेल अथवा घृत का पान कराया जाता है। यदि स्नेहन क्रिया बिगड़ जाये तो रोगी को प्यास लगने लगती है। रोगी का पेट पानी से भर जाता है पर फिर भी तृषा बनी ही रहती है। एक दोहे में बिहारी की नायिका इसी तथ्य को अपने नेत्रों पर घटाकर कहती है कि यह प्रेम रूपी तेल नहीं है अपितु मेरे नयनों के निमित्त कोई बड़ी बलाय उपजी है, क्योंकि यद्यपि मेरे नयन नित्यप्रति नीर (आंसू) से भरे हुए रहते हैं तथापि इनकी प्यास नहीं बुझती।[७३]

कुछ अन्य दोहों में बिहारी पीनस रोग के लक्षण[७४], विषम ज्वर में सुदर्शन के प्रयोग[७५], ज्वर की तीव्रता में रस का प्रयोग[७६] एवं नपुंसकता में पारे का

---

७१. *गनति गनिबैं तैं रहे, छत हूँ अछत समान।*
अलि, अब ए तिथि औम लौं परे रहौ तन प्रान॥
—वही, दो० सं० २७५।

७२. तिय-तिथि तरुन-किसोर-वय पुन्यकाल-सम दोनु।
काहूँ पुन्यनु पाइयतु बैसु-सधि-सक्रोनु॥
—वही, दो० सं० २७४।

७३ नेहु न, नैननु, कौ कछू उपजी बड़ी बलाइ।
नीर-भरे नितप्रति रहैं, तऊ न प्यास बुझाई॥
—बिहारी रत्नाकर, दो० सं० ३७।

७४ सीतल तारु सुवास की घटै न महिमा मूरु।
पीनस वारै जौ तज्यौ सोरा जानि कपूरु॥
—वही, दो० सं० ५६।

७५ यह विनसतु नगु राखि कै जगत बड़ौ जसु लेहु।
जरी विषम जुर जाइयें आइ सुदरसनु देहु॥
—वही, दो० सं० १२०।

७६. हरि हरि [1] बरि बरि उठति है, करि करि थकी उपाइ।
वाको जुरु, बलि बैद, जौ, तो रस जाइ, तु जाइ॥
—वही, दो० ११६।

प्रयोग[७७] करने की ओर भी संकेत करते हैं। बिहारी के ही एक अन्य दोहे में नाड़ी-ज्ञान, निदान इत्यादि की छाया भी मिलती है।[७८]

(३) दर्शन—बिहारी के अनेक दोहों में उनकी दार्शनिकता की भी स्पष्ट छाप विद्यमान है। उदाहरण के लिए वे एक दोहे में भगवान की सर्वव्यापकता एवं अद्वैतवादियों की जगत् मिथ्या की मान्यता को प्रतिपादित करते हुए कहते हैं कि अब मैं जान गया हूँ कि यह मिथ्या जगत् दर्पण के समान है, इसी लिए इसमें एक ही परमात्मा का रूप प्रतिबिम्बित होकर अनन्त रूपों में भासित होता है।[७९]

इसी प्रकार एक अन्य दोहे में वे ब्रह्म की सूक्ष्मता और नायिका की कटि की तुलना करते हैं।[८०] कुछ अन्य दोहों में योग एवं अद्वैतवाद की भी छाया मिलती है।[८१]

(४) धर्म—बिहारी के भक्ति सम्बन्धी दोहों से पता चलता है कि उन्हें विभिन्न धार्मिक रूढ़ियों का भी ज्ञान था। वे एक दोहे में कहते हैं कि जपमाला तप, मुद्रादि तथा तिलक से कुछ भी काम नहीं निकल सकता क्योंकि ये तो मात्र ऊपरी दिखावे हैं। कच्चे मन वाला वृथा ही नाचा करता है, राम तो सच्चाई से ही प्रसन्न होते हैं।[८२] इसी प्रकार एक अन्य दोहे में वे यह कहते हैं कि संसार

---

७७. बहु धनु लै, अहसानु कै, पारौ देत सराहि।
वैद-वधू, हँसि भेद सौं, रही नाह-मुँह चाहि॥
—बिहारी रत्नाकर, दो० ४७६।

७८. मैं लखि नारी-ज्ञानु करि राख्यौ निरधारु यह।
वहई रोग-निदानु, वहै वैदु, ओषधि वहै॥
—वही, दो० सं० ५५७।

७९. मैं समुझ्यौ निरधार, यह जगु काँचो काँच सौ।
एकै रूपु अपार प्रतिबिंबित लखियतु जहाँ॥
—वही, दो० सं० १८१।

८०. बुधि अनुमान, प्रमान श्रुति किये नीठि ठहराइ।
सूछम कटि पर ब्रह्म की अलख, लखी नहिं जाइ॥
—वही, दो० ६४८।

८१. जोग जुगति सिखए सबै मनो महामुनि मैन।
चाहत पिय-अद्वैतता कानन सेवन नैन॥
—वही, दो० १३।

८२. जपमाला, छापैं तिलक सरै न एकौ कामु।
मन-काँचै नाचै वृथा, साँचै राँचै रामु॥
—वही, दो० सं० १४१।

भर के भिन्न-भिन्न देव उपासक (अर्थात् वैष्णव, शैव, शाक्त आदि) अपने-अपने मत में लगे हुए व्यर्थ वाद-विवाद करते हैं। सच्चा सिद्धान्त तो यह है कि सबको किसी-न-किसी प्रकार एक ही नंद किशोर की सेवा करनी है।[८३]

(५) बिहारी का इतिहास पुराण सम्बन्धी ज्ञान (ऐतिह्य ज्ञान) —बिहारी-सतसई में इस बात के अनेक प्रमाण विद्यमान हैं कि बिहारी को रामायण, महाभारत सहित अनेक पौराणिक गाथाओं का ज्ञान था। उदाहरण के लिए रामायण में यह वर्णन आता है कि जब हनुमान समुद्र लाँघ रहे थे तो समुद्र में रहने वाली राक्षसी ने हनुमान की छाया पकड़ ली जिससे हनुमान को समुद्र पार करने में बहुत कठिनाई हुई। बिहारी ने भी एक दोहे में स्त्री को संसार-सागर पार करने में छाया ग्राहिणी राक्षसी माना है जिसके कारण कोई भी सरलतापूर्वक भवसागर पार नहीं कर सकता।[८४] इसी प्रकार कुछ अन्य दोहों में सीता की अग्नि परीक्षा,[८५] जटायु के उद्धार इत्यादि का वर्णन भी मिलता है जिनसे बिहारी के रामायण ज्ञान का परिचय मिलता है।

बिहारी के महाभारत के ज्ञान का परिचय सतसई के उस दोहे[८७] से भी मिलता है जिसमें नायिका अपनी सखी से कहती है कि विरह का समय द्रौपदी के चीर की भाँति बढ़ता ही जाता है, अवधि रूपी वीर दुशासन उसे खींच रहा है पर उसका अंत ही नहीं पाता। इससे पता चलता है कि बिहारी को महाभारत में

---

८३ अपनैं अपनैं मत लगे वादि मचावत सोरु।
ज्यौं त्यौं सबकौ सेइवौ एकै नंद किसोरु॥
—बिहारी रत्नाकर, दो० ५८१।

८४. या भव-पारावार कौ उलघि पार को जाइ।
तिय छवि-छायाग्रहानी ग्रहै बीचही आई॥
—वही, दो० सं० ४३३।

८५. बसि सकोच-दसबदन-बस साचु दिखावति बाल।
सियलौं सोधति तिय तनहिं लगनि-अगिनि की ज्वाल॥
—वही, दो० ७४।

८६. कौन भाँति रहिहै बिरदु अब देखिबी मुरारि।
बीधे मोसौं आइ कै गीधे गीधहिं तारि॥
—वही, दो० ३१।

८७. रह्यौ ऐंचि, अंतु न लहै अवधि-दुसासनु बीरु।
आली, बाढतु बिरहु, ज्यौं पंचालि कौ चीरु॥
—वही, दो० ४००।

वर्णित द्रौपदी चीरहरण की घटना का ज्ञान था। एक अन्य दोहे में बिहारी कहते हैं कि नायक नायिका के हृदय मे विरह रूपी दुर्योधन निवास करता है किन्तु आश्चर्य है कि उसका स्पर्श किसी तरह से नही हो पाता।[८८] स्पष्ट है कि यह दोहा महाभारत की इस कथा पर आधारित है कि दुर्योधन जल-स्तम्भन की विद्या जानता था। इसी प्रकार एक अन्य दोहे मे दुर्योधन को प्राप्त उस वरदान की भी चर्चा की गई है कि उसकी मृत्यु तब होगी जब उसे हर्ष और शोक समान मात्रा मे होंगे।[८९]

बिहारी ने अपनी सतसई मे भावो के स्पष्टीकरण के लिए रामायण-महाभारत के अतिरिक्त पुराणों मे वर्णित चन्द्र से बुद्ध की उत्पत्ति की कथा[९०], मदन-दहन की कथा[९१], वामनावतार की कथा[९२], गजग्राह की कथा[९३], इत्यादि अनेक पौराणिक गाथाओं का आश्रय भी ग्रहण किया है जिनसे उनके पौराणिक साहित्य सम्बन्धी व्यापक ज्ञान का परिचय मिलता है।

(६) राजनीति सम्बन्धी ज्ञान—राजधर्म मे राज्य के सात अंग माने जाते हैं—स्वामी, अमात्य, सुहृत्, कोष, राष्ट्र, दुर्ग और बल। बिहारी ने भी एक

---

८८. विरह-बिथा-जल-परस-बिन बसियतु मो-मन-ताल।
कछु जानत जल-थंभ-बिधि दुर्जोधन लौं, लाल॥
—बिहारी रत्नाकर, दो० ४१४।

८९. पिय-बिछुरन का दुसहु दुखु, हरषु, जात प्यौसार।
दुरजोधन लौं देखियति तजत प्रान इहि बार॥
—वही, दो० १५।

९०. तिय मुख लखि हीरा-जरि बेंदी बढ़ै बिनोद।
सुत-सनेह मानौ लियौ बिधु पूरन बुधु गोद॥
—वही, दो० सं० ७०७।

९१. मोर-मुकट की चंद्रिकनु यौ राजत नदनंद।
मनु ससिसेखर की अकस किय सेखर सत चंद॥
—वही, दो० सं० ४१६।

९२. छुवै छिगुनी पहुँचो गिलत अति दीनता दिखाइ।
बलि बावन कौ ब्यौं तुसुनि को, बलि तुम्हैं पत्याइ॥
—वही, दो० १५६।

९३. नीकी दई अनाकनी, फीकी परी गुहारि।
तज्यौ मनौ तारन-बिरदु बारक बारनु तारि॥
—वही, दो० सं० ११।

दोहे मे शरीर के अंगों की तुलना राज्य के अंगों से की है।[९४] इसी प्रकार छ: उपाय माने जाते हैं—सन्धि, विग्रह, यान, आसन, संश्रय और द्वैधी भाव। बिहारी भी एक दोहे मे इन सभी उपायों का निर्देश कर देते हैं।[९५] इसी प्रकार एक अन्य दोहे में व्यक्त बिहारी का यह मत कि जब एक ही साथ दो व्यक्तियों का शासन हो तो प्रजा के दु:ख द्वन्द्व बढ़ जाते हैं[९६] उनकी राजनीतिक सूझ-बूझ का परिचायक है।

(७) नीति शास्त्र का ज्ञान—बिहारी सतसई में नीति सम्बन्धी अनेक दोहे मिलते हैं जिनमें बिहारी ने खल से भय की नीति[९७], सगति का दोष[९८], नीच का स्वभाव[९९], सत्पुरुष की विनम्रता[१००] पद का लोभ[१०१], बड़ो की मर्यादा

९४.	अपने अग के जानि कै जोबन-नृपति प्रवीन।
स्तन, मन, नैन, नितंब कौ बड़ौ इजाफा कीन॥
—बिहारी रत्नाकर, दो० २।

९५	क्यौं सहवात न लगै, थाके भेद-उपाइ।
हठ-दृढगढ-गढवै सु चलि लीजै सुरग लगाइ॥
—वही, दो० ३०६।

९६.	दुसह दुराज प्रजानु कौं क्यों न बढ़े दुख-दंदु।
अधिक अँधेरी जग करत मिलि मावस रबि-चदु॥
—वही, दो० ३५७।

९७.	बसै बुराई जासु तन, ताही कौ सनमानु।
भलौ भलौ कहि छोड़ियै, खोटैं ग्रह जपु दानु।
—वही, दो० ३८१।

९८.	सगति-दोष लगै सबनु, कहे ति साचे बैन।
कुटिल-बक-भ्रुव सग भए कुटिल, बक-गति नैन॥
—वही, दो० ३०३।

९९.	न ए बिस-सियहिं लखि नए दुरजन दुसह-सुभाइ।
आटैं परि प्राननु हरत काटैं लौ लगि पाइ॥
—वही, दो० ३११।

१००.	नर की अरु नल-नीर की गति एकै करि जोई।
जेतौ नीचौ ह्वै चलै, तेतौ ऊँचौ होई॥
—वही, दो० ३२१।

१०१.	गहै न नेकौ गुन-गरबु, हसो सबै संसारु।
कुच-उचपद-लालच रहै गरै परै हूँ हारु॥—वही, दो० ३७७।

हीनता[१०२], सच्चे प्रेमी का स्वभाव[१०३], सूम का स्वभाव[१०४], समय का फेर[१०५], रजोगुण से हानि[१०६], इत्यादि का वर्णन किया है। ये सब दोहे बिहारी के व्यावहारिक ज्ञान के परिचायक हैं। चूंकि इनका मूल प्रयोजन व्यवहार कुशलता का उपदेश है अतः हम इन्हें नीति-साहित्य के अन्तर्गत ही स्थान देते हैं। किन्तु इन दोहों के आधार पर हम यह नही कह सकते कि बिहारी का आचार नीति, कूटनीति, अर्थनीति आदि में से किसी भी एक विषय पर अधिकार था अथवा उसके सम्बन्ध में कोई स्वतन्त्र दृष्टिकोण या दर्शन था। बिहारी के इन दोहों में उनके इन विषयों पर केवल फुटकर विचार मात्र हैं।[१०७]

(८) कामशास्त्र का ज्ञान—बिहारी का दन्त-क्षत, नखक्षत, विपरीत, रति इत्यादि का वर्णन उनके कामशास्त्रीय ज्ञान के परिचायक है। एक दोहे में कामशास्त्र सम्बन्धी अनेक आसनों की छाया लक्षित होती है।[१०८]

(९) युद्ध-विद्या का ज्ञान—कतिपय दोहों से बिहारी के युद्ध विद्या संबंधी ज्ञान पर भी प्रकाश पड़ता है। युद्ध के लिए जब सेनाएं प्रस्थान करती हैं तब उसके आगे चलने के लिए सेना की छोटी टुकड़ी भेजी जाती है, जिससे मुख्य

---

१०२. ओछे बड़े न ह्वै सकैं, लगौ सतर ह्वै गैन।
दीरघ होहि न नैंकु हूँ फारि निहारैं नैन॥
—बिहारी रत्नाकर, दो० सं० ५९०।

१०३. सरस कुसुम मंडरातु अलि, न झुकि झपटि लपटातु।
दरसत अति सुकमारु तनु, परसत मन न पत्यातु॥
—वही, दो० ३६६।

१०४. जेती संपति कृपन कैं, तेती सूमति जोर।
बढ़त जात ज्यौं ज्यौं उरज, त्यौं त्यौं होत कठोर॥
—वही, दो० १११।

१०५. मरतु प्यास पिंजरा-परयौ सुआ समैं कैं फेर।
आदरु दै दै बोलियतु बाइसु बलि की बेर।
—वही, दो० ४३५।

१०६. जौ चाहत, चटक न घटै, मैलो होइ न, मित्त।
रज राजसु न छुवाइ तौ नेह-चीकनौ चित्त॥
—वही, दो० ३९६।

१०७. बिहारी; डा० ओम् प्रकाश, पृ० १०६।

१०८. पलनु पीक, अंजनु अधर, धरे महावरु भाल।
आजु मिले, सु भली करी, भले बने हौ लाल॥
—वही, दो० सं० २२।

सेना सुरक्षित रहे और उस सेना की आड़ से शत्रु पर प्रहार करे। सेना के इस भाग को 'हरौल' कहते हैं। जब शत्रु पक्ष की सेनाएं सबल होती हैं और हरौल हलकी होती है तब मुख्य सेना हरौल की उपेक्षा कर तत्काल आगे आ शत्रु की सेना पर टूट पड़ती है। बिहारी भी एक दोहे[१०९] में घूंघट के पतले परदे को हरौल एवं नायक नायिका के नेत्रों को मुख्य सेना की उपमा देने के अनन्तर प्रतिपादित करते हैं कि जिस प्रकार मुख्य सेना 'हरौल' का अतिक्रमण कर शत्रु की मुख्य सेना पर टूटती है, उसी प्रकार दोनों के नेत्र घूंघट का अतिक्रमण कर आपस में मिल गये। इसी प्रकार एक अन्य दोहे[११०] में बिहारी कहते हैं कि जिस प्रकार शत्रु सेना आवास छुडाने का आक्रमण कर रही हो तब कोई दुर्बल प्रतिपक्षी वन में बने हुए अपने किसी निवास स्थान में छुपा रहता है उसी प्रकार जब प्रियतम का हाथ रूपी सैन्य दल नायिका के वस्त्र को छुड़ाने के लिए दौड़ने लगा तब नायिका की लज्जा, वरुणी-रूपी जंगल में नेत्र-रूपी गुप्त आवास स्थान में छिप गई।

(१०) **रसायन शास्त्र का ज्ञान**—जब किसी औषधि का अर्क खींचना होता है तब सामान्यत. उसे पहले पानी में डुबो देते हैं फिर किसी बर्तन में भर कर उसे आग पर चढ़ा देते हैं और नीलाभ यन्त्र से उसका सम्बन्ध एक दूसरे बर्तन से कर देते हैं। औषधि पात्र का जल औषधि का सार लेकर भाप बन कर उड़ जाता है और नीलाभ यन्त्र के द्वारा दूसरे बर्तन में पहुँच कर पानी बनकर टपक जाता है। बिहारी भी एक दोहे में रसायन शास्त्र की इस विधि का आधार ग्रहण करके कहते है कि हृदय में प्रेम रस भीगा हुआ है और वियोगाग्नि से संतप्त किया गया है। इस प्रकार हृदय नेत्रों के मार्ग से पसीज पसीज कर पानी के रूप में बहता है।[१११] इसी प्रकार एक अन्य दोहे में वे सेंहुड के दूध की इस विशेषता की ओर भी संकेत करते हैं कि यदि उसके दूध से कागज पर कुछ लिखा जाए तो अक्षर दिखाई नही देंगे, किन्तु यदि उसी कागज को

---

१०९ जुरे दुहुन के दृग झमकि, रुके न झीनैं चीर।
हलुकी फौज हरौल ज्यौं परै गोल पर भीर॥
—बिहारी रत्नाकर, दो० सं० १९८।

११० लखि दौरत पिय-कर-कटकु बास-छुड़ावन-काज।
बरुनी-बन गाढ़ै दृगनु रही गुढ़ौ करि लाज॥
—वही, दो० सं० ४६४।

१११. तच्यौ आँच अब बिरह की, रह्यौ प्रेम-रस भीजि।
नैननु कैं मग जलु बहै, हियौ पसीजि पसीजि॥
—वही, दो० ३७८।

आंद दिखाई जाए तो वे समस्त अक्षर दिखाई देने लगेंगे।[११२] यह सब बिहारी के रसायन शास्त्र सम्बन्धी सामान्य ज्ञान के द्योतक हैं।

(११) भौतिक शास्त्र का सामान्य ज्ञान–भौतिक विज्ञान के अनुसार पीले और नीले रंग के सम्मिश्रण से हरा रंग बनता है। बिहारी भी अपनी सतसई में पहले ही दोहे में कहते है कि वही नागरी राधिका जी जिनके शरीर की पीत आभा में मिलकर कृष्ण का नीला रंग हरे रंग में परिणत हो जाता है, मेरी सांसारिक बाधाओं को दूर करें।[११३] यह निश्चय ही बिहारी के भौतिक विज्ञान संबंधी सामान्य ज्ञान का द्योतक है।

(१२) गणित का सामान्य ज्ञान—बिहारी एक दोहे[११४] में गणित के इस सामान्य सिद्धान्त की ओर संकेत करते हैं कि बिन्दु लगाने से कोई भी अंक दस गुना हो जाता है तथा एक अन्य दोहे[११५] में वे टेढ़ी लकीर लगाने से दाम का रुपया हो जाने की बात कहते हैं जो कि बिहारी के गणित सम्बन्धी सामान्य ज्ञान का द्योतक है।

(१३) शिल्प शास्त्र का सामान्य ज्ञान—बिहारी एक दोहे में शिल्प शास्त्र के इस नियम की ओर भी संकेत करते हैं कि नल जितना नीचा रखा जायेगा, उससे निकली पानी की धार उतनी ही ऊँची जायेगी।[११६]

(१४) कृषि शास्त्र का ज्ञान—एक दोहे में बिहारी समाप्त होने वाली

---

११२. छतौ नेहु कागर हियैं, भई लखाई न टाकु।
बिरह तचैं उघर्यौ सु अब सेंहुड कैसो आकु॥
—बिहारी रत्नाकर, ४५७।

११३. मेरी भव बाधा हरौ, राधा नागरि सोइ।
जा तन की झाईं परैं, स्यामु हरित-दुति होइ॥
—वही, दो० १।

११४. कहत सबै, बेंदी दियैं आंकु दसगुनौ होत।
तिय-लिलार बेंदी दियैं अगिनितु बढ़तु उदोतु॥
—वही, दो० सं० ३२७।

११५. कुटिल अलक छुटि परत मुख बढ़िगौ इतौ उदोतु।
बंक बकारी देत ज्यौं दामु रुपैया होतु॥
—वही, दो० सं० ४४२।

११६. नर की अरु नल नीर की गति एकै करि जोई।
जेतौ नीचौ ह्वै चलै, तेतौ ऊँचौ होइ॥
—वही, दो० सं० ३२१।

फसलों का क्रमशः उल्लेख करते हैं। पहले तो सन काटा जाता है, उसके बाद कपास, फिर ईख समाप्त होती है और इसके बाद अरहर काटी जाती है।[११७] इसी प्रकार एक अन्य दोहे में इस बात का उल्लेख करते हैं कि कपास जब तैयार हो जाती है तब उसकी ढोडियों को चुन लिया जाता है।[११८] ये दोहे इस बात के द्योतक हैं कि बिहारी का कृषि सम्बन्धी सामान्य ज्ञान अच्छा था। एक अन्य दोहे में वे एक साथ मोगरा, पाटला (इन्द्र बेल), सोन जुही, चम्पक, चपर, गुल्लाला, नैन आदि अनेक पुष्पों के नाम गिना देते हैं जो कि इस बात का प्रमाण है कि इन्हें पुष्पों का अच्छा ज्ञान था।[११९]

(१५) काव्यशास्त्र का ज्ञान —बिहारी के काव्यशास्त्र सम्बन्धी ज्ञान के विषय में अधिक न कह कर आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के शब्दों में केवल इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि 'रीति का यदि परिष्कृत ज्ञान न होता तो बिहारी पर इतना अधिक वाङ्मय ही न आकलित होता। सतसई तो बहुतों ने लिखी, पर टीकाकार जो इन्हीं की सतसैया की ओर बहुत झुके उसका हेतु था कि सचमुच उसकी टीका लिख देने का अर्थ अपने साहित्य ज्ञान को प्रमाणित करना था। शृंगारकाल में 'कवि-प्रिया' पढ़े बिना कोई हिन्दी का कवि नहीं हो सकता था और 'केशव की राम चन्द्रिका तथा बिहारी की सतसैया का अर्थ लगाए बिना 'पंडित' नहीं। रामचन्द्रिका की टीका साहित्य समाज मे प्रतिष्ठा का कारण होती थी और सतसैया की टीका साहित्य समाज के साथ-साथ राजसभा में भी प्रतिष्ठा दिलाती थी।[१२०]

५. बिहारी की ग्रहण-शक्ति

ग्रहण शक्ति भी व्यक्तित्व के बौद्धिक पक्ष का प्रमुख अंग है एवं कल्पना की भाँति ही इसका सम्बन्ध मुख्यतया साहित्यकार की शैली से होता है। जिस प्रकार

---

११७. सनु सूक्यौ, बीत्यौ बनौ, ऊखौ लई उखारि।
हरी हरी अरहरि अजैं धरि धरहरि जिय नारि॥
—बिहारी रत्नाकर, दो० सं० १३५।

११८. फिरि फिरि बिलखि ह्वै लखति फिरि फिरि लेति उसासु।
साईं ! सिर-कच-सेत लौं बीत्यौ चुनति कपासु॥
—वही, दो० १३८।

११९. कत लपटइयतु मो गरैं, सो न, जुही निसि सैन।
जिहिं चंपक-बरनी किए, गुल्लाला-रंग नैन॥
—वही, दो० सं० ४६६।

१२०. बिहारी; विश्वनाथ मिश्र, पृ० ११६।

कल्पना शक्ति के अन्तर के कारण दो कवियों के बिम्ब विधान, अलंकार योजना, व्यंग्यात्मकता, वस्तु नियोजन, आदि में अन्तर आ जाता है, ठीक उसी प्रकार ग्रहण शक्ति के अन्तर के कारण दो साहित्यकारों के साहित्य में प्रयुक्त शब्दावली, अर्थ, शक्ति, व्याकरण, मुहावरे में अन्तर आ जाता है।

किसी भी साहित्यकार की ग्रहण शक्ति का पता मुख्यत. उसके द्वारा रचित साहित्य मे प्रयुक्त शब्दो एवं मुहावरों द्वारा चलता है। विहारी ने अपनी सतसई की रचना उत्कृष्ट ब्रजभाषा में की है तथा इसी कारण सतसई आलोचकों की दृष्टि मे सम्माननीय थी[१२१], लेकिन जिस प्रकार भौरा विभिन्न पुष्पो से मधु एकत्रित करता है, उसी प्रकार विहारी ने भी विभिन्न भाषाओं के शब्द रत्नों को चुन-चुनकर सतसई-रूपी गहने मे जड़ने का सफल प्रयास किया है जिससे जहाँ एक ओर सतसई के सौन्दर्य मे चार चाद लग गये हैं वहाँ दूसरी ओर यह विहारी की अच्छी ग्रहण शक्ति का भी परिचायक है।

विहारी ने संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं का पर्याप्त अध्ययन किया था अत. इन तीनों ही भाषाओ के शब्दों का सतसई मे पर्याप्त प्रयोग हुआ है, किन्तु डा० रामसागर त्रिपाठी के अनुसार यदि विहारी-सतसई में प्रत्येक भाषा के शब्दों का अनुपात निकाला जाय तो सबसे अधिक संख्या संस्कृत के तत्सम परिनिष्ठित शब्दों की आवेगी।[१२२] विहारी का बचपन बुन्देलखण्ड में बीता अत: विहारी-सतसई मे खैर, लखयी, करबी, पायबी, लाने, कोद, मटोर, चाल आदि अनेक बुन्देली शब्दो का सतसई में समावेश हो जाना स्वाभाविक ही है। देशी भाषाओं मे बुन्देली के अतिरिक्त पूर्वी एव अवधी भाषा के दीन, कीन, लीन, आदि, लजियातु, जोहि, केही, इत्यादि शब्द भी सतसई मे यत्र-तत्र दृष्टिगोचर हो जाते हैं।

विहारी-सतसई मे विदेशी शब्द संख्या में सौ से भी कम हैं जो प्रयुक्त शब्दावली के एक प्रतिशत अंश भी नहीं है।[१२३] विहारी ने विदेशी शब्दो को तीन प्रकार से ग्रहण किया —विदेशियों के साथ प्रशासनिक अथवा राजनीतिक सम्पर्क से, विदेशियों के साथ सांस्कृतिक सम्पर्क से तथा विदेशियो के साथ सामाजिक सम्पर्क से। राजनीतिक सम्पर्क से सतसई मे फौज[१२४] (सेना), निसान[१२५]

१२१. ब्रज भाषा वरनी सबै, कविवर बुद्धि-विशाल।
सबकी भूषन सतसई, रची विहारी लाल॥

१२२. मुक्तक काव्य-परम्परा और विहारी ; डा० रामसागर त्रिपाठी, पृ० ३५२।

१२३. विहारी ; डा० ओम् प्रकाश, पृ० ६७।

१२४. विहारी रत्नाकर, दोहा सं० ८०, १६८, २१५।

१२५. वही, दो० सं० १०३।

(ध्वज), इजाफा[१२६] (वृद्धि), गरीवु[१२७] (कृपापात्र), दरबारी[१२८] (राजसभा), इत्यादि शब्द आए। सांस्कृतिक संपर्क से बिहारी ने चौगान[१२९] (अश्वारोहणपूर्वक कन्दुक क्रीड़ा विशेष), गुलाब[१३०] (पाटल), गुलाल[१३१] (चूर्ण लाल) इत्यादि शब्द ग्रहण किये तथा सामाजिक सम्पर्क से वलाय[१३२] (विपत्ति), हवाल[१३३] (दशा), वकूति[१३४] (स्वीकार कर), वदराह[१३५] (कुमार्गगामी), मौज[१३६] (तरंग), वेहाल[१३७] (चिन्ताजनक दशा), जुदी[१३८] (अलग) इत्यादि शब्द आ गए। बिहारी ने सतसई मे लोकोक्तियो और मुहावरो का भी पर्याप्त प्रयोग किया है।

आचार्य पद्मसिंह शर्मा[१४०], श्री बिहारी मिश्र[१४१], श्री मथुरा प्रसाद[१४२], श्री ऋपीश्वरनाथ भट्ट[१४३], डा० रमाशंकर तिवारी[१४४], प्रभृति विद्वानो ने बिहारी सतसई के अनेक दोहो को गाथा सप्तशती, आर्या सप्तशती, अमरुक शतक आदि के आधार पर रचित सिद्ध किया है। स्पष्ट है कि बिहारी को प्राकृत, संस्कृत

---

१२६. बिहारी रत्नाकर, दो० सं० २।
१२७. वही, दो० सं० ५८।
१२८. वही, दो० सं० २४१।
१२९. वही, दो० सं० १७८।
१३०. वही, दो० सं० २५५, २५६, २७०, ३०८, ३५४।
१३१. वही, दो० सं० ३५२ तथा ६३३।
१३२. वही, दो० सं० ३७, १९५।
१३३. वही, दो० सं० ३८।
१३४ वही, दो० सं० ५१।
१३५. वही, दो० सं० ६३, १५।
१३६. वही, दो० सं० ८०।
१३७. वही, दो० सं० १५४, ६०१।
१३८. वही, दो० सं० ६१६।
१३९ मुक्तक काव्य-परम्परा, डा० राम सागर, पृ० ३५३।
१४०. बिहारी की सतसई, पृ० ३९—६७।
१४१. देव और बिहारी, श्री बिहारी मिश्र।
१४२. गाथा सप्तशती की संस्कृत टीका के रचयिता।
१४३. अमरुकशतक के टीकाकार।
१४४. बिहारी का काव्य लालित्य, पृ० ६६।

अपभ्रंश, हिन्दी इत्यादि भाषाओं मे रचित जो कोई भी शृंगार रस की सुन्दर रचना मिली, उन्होंने उसका अध्ययन-आस्वादन करने के अनन्तर अपनी रुचि एवं प्रवृत्ति के अनुसार उनके भावों को ग्रहण कर लिया। यह बिहारी की ग्रहण शक्ति का अच्छा उदाहरण है।

अन्त मे हम बिहारी की ग्रहण शक्ति के सम्बन्ध मे अधिक न कहकर डा० नगेन्द्र के शब्दो मे इतना कहना ही पर्याप्त समझेंगे कि 'बिहारी में सौंदर्य के सूक्ष्म से सूक्ष्म तत्त्व को ग्रहण कर शब्दबद्ध करने की जैसी अभूतपूर्व क्षमता है, वैसी देव अथवा रीति युग के किसी भी कवि मे नहीं है।'[१४५]

---

१४५. रीतिकाव्य की भूमिका तथा देव और उनकी कविता, डा० नगेन्द्र पृ० २६८।

(ध्वज), इज़ाफा[१२६] (वृद्धि), गरीबु[१२७] (कृपापात्र), दरबारी[१२८] (राजसभा), इत्यादि शब्द आए। सांस्कृतिक संपर्क से बिहारी ने चौगान[१२९] (अश्वारोहणपूर्वक कन्दुक क्रीड़ा विशेष), गुलाब[१३०] (पाटल), गुलाल[१३१] (चूर्ण लाल) इत्यादि शब्द ग्रहण किये तथा सामाजिक सम्पर्क से बलाय[१३२] (विपत्ति), हवाल[१३३] (दशा), कबूलि[१३४] (स्वीकार कर), बदराह[१३५] (कुमार्गगामी), मौज[१३६] (तरंग), बेहाल[१३७] (चिन्ताजनक दशा), जुदी[१३८] (अलग) इत्यादि शब्द आ गए। बिहारी ने सतसई में लोकोक्तियों और मुहावरों का भी पर्याप्त प्रयोग किया है।

आचार्य पद्मसिंह शर्मा[१४०], श्री बिहारी मिश्र[१४१], श्री मथुरा प्रसाद[१४२], श्री ऋषीश्वरनाथ भट्ट[१४३], डा० रमाशंकर तिवारी[१४४], प्रभृति विद्वानों ने बिहारी सतसई के अनेक दोहों को गाथा सप्तशती, आर्या सप्तशती, अमरुक शतक आदि के आधार पर रचित सिद्ध किया है। स्पष्ट है कि बिहारी को प्राकृत, संस्कृत

---

१२६. बिहारी रत्नाकर, दो० सं० २।
१२७. वही, दो० सं० ५८।
१२८. वही, दो० सं० २४१।
१२९. वही, दो० सं० १७८।
१३०. वही, दो० सं० २५५, २५६, २७०, ३०८, ३५४।
१३१. वही, दो० सं० ३५२ तथा ६३३।
१३२. वही, दो० सं० ३७, १९५।
१३३. वही, दो० सं० ३८।
१३४ वही, दो० सं० ५१।
१३५. वही, दो० सं० ६३, १५।
१३६. वही, दो० सं० ८०।
१३७. वही, दो० सं० १५४, ६०१।
१३८. वही, दो० सं० ६१६।
१३९ मुक्तक काव्य-परम्परा, डा० राम सागर, पृ० ३५३।
१४०. बिहारी की सतसई, पृ० ३९—६७।
१४१. देव और बिहारी, श्री बिहारी मिश्र।
१४२. गाथा सप्तशती की संस्कृत टीका के रचयिता।
१४३. अमरुकशतक के टीकाकार।
१४४. बिहारी का काव्य लालित्य, पृ० ६६।

अपभ्रंश, हिन्दी इत्यादि भाषाओं में रचित जो कोई भी शृंगार रस की सुन्दर रचना मिली, उन्होंने उसका अध्ययन-आस्वादन करने के अनन्तर अपनी रुचि एवं प्रवृत्ति के अनुसार उनके भावों को ग्रहण कर लिया। यह बिहारी की ग्रहण शक्ति का अच्छा उदाहरण है।

अन्त में हम बिहारी की ग्रहण शक्ति के सम्बन्ध में अधिक न कह कर डा० नगेन्द्र के शब्दों में इतना कहना ही पर्याप्त समझेंगे कि 'बिहारी में सौंदर्य के सूक्ष्म से सूक्ष्म तत्त्व को ग्रहण कर शब्दबद्ध करने की जैसी अभूतपूर्व क्षमता है, वैसी देव अथवा रीति युग के किसी भी कवि में नहीं है।'[१४५]

१४५. रीतिकाव्य की भूमिका तथा देव और उनकी कविता, डा० नगेन्द्र पृ० २६८।

४ | बिहारी के व्यक्तित्व का भावात्मक पक्ष

सहज प्रवृत्तियाँ और भावनाएँ : सामान्य विवेचन

आधुनिक मनोविज्ञान के अनुसार मनुष्य के भावात्मक पक्ष को अनेक तत्वो मे विभक्त किया जा सकता है जिनमे सहज प्रवृत्तियाँ और भावनाएँ प्रमुख हैं। इनका यहाँ क्रमश परिचय दिया जाता है।

सहज प्रवृत्तियाँ—हिन्दी मे 'सहज प्रवृत्ति' शब्द अग्रेजी के इन्स्टिक्ट (Instinct) शब्द के पर्याय के रूप मे ग्रहण किया जाता है। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक मैक्डूगल के अनुसार 'सहज प्रवृत्ति एक जन्मजात व्यवस्था है, जो आगिक क्रियाओ को, किसी वस्तु के प्रत्यक्षीकरण करने एव उसकी (वस्तु की) उपस्थिति मे विशिष्ट भावात्मक उत्तेजना को अनुभव करने तथा उसके अनुसार कार्य करने की प्रेरणा देती है तथा वह (सहज प्रवृत्ति) उपस्थित वस्तु से सम्बन्धित एक विशेष प्रकार की क्रिया द्वारा अभिव्यक्त होती है।'[1] मेरी स्टुअर्ट के अनुसार अनुभव एव क्रिया करने की जन्मजात वृत्ति ही सहज प्रवृत्ति

---

1. 'An instinct is an innate disposition which determines the organism to perceive (to pay attention to) any object of a certain class and to experiment in its presence certain emotional excitement and an impulse to action, which find expression in a specific mode of bahavior in relation to that object'.

—An outline of Pschology by William Mc Dougall. p. 110.

कहलाती है।[2] वैलन टाइन की धारणा है कि मानव में जन्मजात वृत्तियाँ[3] ही सहज वृत्तियाँ हैं। उन्होंने सहज प्रवृत्तियों के सम्बन्ध में, जीव-विज्ञान की मान्यताओं के आधार पर, दो सिद्धान्तों का उल्लेख किया है—प्रथम विशेष प्रकार से कार्य करने का सहज आवेग (Instinct Impulse), द्वितीय सुचारु ढंग से क्रिया करने की जन्मजात प्रवृत्ति जोकि अनुभव पर आधारित नहीं हैं।

इन परिभाषाओं से उपलब्ध तथ्यों के आधार पर हम कह सकते हैं कि मानव में विशिष्ट परिस्थिति में किसी वस्तु अथवा दृश्य के प्रत्यक्षीकरण से भावात्मक उत्तेजना उत्पन्न करने की जो विशिष्ट जन्मजात वृत्ति कार्य करती है उसे हम सहज प्रवृत्ति की संज्ञा दे सकते हैं।

सहज प्रवृत्तियाँ मानव की समस्त क्रियाओं की मुख्य वाहक हैं। यदि मानव के भीतर से सहज प्रवृत्तियों को उनकी शक्तिशाली क्रियाओं सहित निकाल दिया जाये तो आंगिक व्यवस्था (Organism) निष्क्रिय हो जाएगी। इसकी वैसी ही दशा हो जाएगी जैसी वाष्प के बिना वाष्प इंजन की अथवा स्प्रिंग के बिना घड़ी की हो जाया करती है। जेम्स महोदय की यह धारणा कि समय आने पर सहज प्रवृत्तियाँ नष्ट हो जाती है, निश्चय ही भ्रामक है। वास्तव में सहज प्रवृत्तियाँ कभी नष्ट नहीं होती। यदि वे चेतन में नहीं तो अचेतन में सदैव जीवित रहती हैं तथा वहाँ से वे व्यक्ति के व्यवहार पर विशेष प्रभाव डालती हैं। सहज प्रवृत्यात्मक कर्म व्यवहार के जन्मजात ढंग हैं। 'व्यक्ति उनका अर्जन नहीं करता। वे अर्जित या सीखे हुए कर्म नहीं हैं। वे न ऐच्छिक कर्म हैं, न दूसरों के व्यवहार के अनायास अनुकरण से और न आदत से उत्पन्न कर्म। वे व्यक्ति के अनुभव पर आश्रित नहीं है, बल्कि केवल उसके सहज दैहिक गठन या स्नायु तंत्र के जन्मजात स्नायु पथों पर आश्रित हैं।[4]

सहज प्रवृत्तियाँ प्रारम्भिक अवस्था में भी अपने स्वतन्त्र एवं विशुद्ध रूप में विकसित नहीं होती। प्रत्येक सहज प्रवृत्ति धीरे-धीरे शारीरिक क्रियाओं में विकसित होती है एवं इसका प्रकटीकरण संपूर्ण रूप में होने से पूर्व अर्द्ध विकसित अथवा अपूर्ण अवस्था में होता है।[5] मैक्डूगल महोदय के अनुसार हमारी ये सहज

---

2. 'Inborn tendencies to act and feel are called instincts'.
—Modern Psychology and education : Marry Sturt and aken. p. 23.
3. 'Inborn tendencies in man'. —Psychology. p. 550
४. मनोविज्ञान ; डा० यदुनाथ सिन्हा, पृ० २६१।
5. 'Each Instinct developes in the organism gradually an may press itself in partial and incomplete fashion before is perfected'.
—An outline of Psychology, William Mc Douga

प्रवृत्तियाँ या जन्मजात प्रवृत्तियाँ ही बाह्य वातावरण एवं परिस्थितियो के प्रभाव से पोषित, विकसित, एव उद्दीप्त होती हुई विभिन्न भावात्मक प्रवृत्तियो का रूप धारण कर लेती हैं। हमारी सहज प्रवृत्तियों का विकास एव प्रकाशन क्रमश: भावनाओ (Sentiments), चारित्रिक प्रवृत्तियों व स्वभावगत गुणो (Tempraments), भावात्मक दृष्टिकोणो (Attitudes), मनोदशाओं (Moods), मूल भावों (Primary emotions), व्युत्पन्न भावों (Derived emotions), और अनुभूतियों (Feelings) के रूप मे होना है।[६]

सहज प्रवृत्तियों का वर्गीकरण - यद्यपि प्राय सभी मनोवैज्ञानिक सहज प्रवृत्तियो को ही हमारी समस्त भावात्मक प्रवृत्तियो के मूल आधार के रूप मे स्वीकार करते हैं किन्तु फिर भी इनके भेदोपभेद के सम्बन्ध मे इनमे परस्पर मतभेद है। ड्रेवर महोदय सहज प्रवृत्तियो के केवल दो वर्ग[७] मानते है—(१) रुच्यात्मक (Appetitive), (२) प्रतिक्रियात्मक (Reactive)।

वुडवर्थ सहज प्रवृत्तियो को तीन भागो मे बाटते हैं—[८]

(१) शरीर रक्षार्थ सहज आवश्यकताओं से सम्बन्धित हमारी प्रतिक्रिया यथा—भूख, प्यास आदि।

(२) दूसरे व्यक्तियों से सम्बन्धित प्रतिक्रिया जैसे—सामूहिक जीवन-काम-तृप्ति, पुत्र-कामना आदि।

(३) खेल सम्बन्धी प्रवृत्तियाँ चलना, दौडना, हसना आदि।

विलियम जेम्स अपने ग्रन्थ 'प्रिंसिपल्स आफ साइकालोजी' मे जहाँ इनकी सख्या २५ से भी अधिक निर्धारित करते हैं वहाँ मैक्डूगल महोदय केवल चौदह प्रवृत्तियो को ही सहज प्रवृत्तियो के रूप मे स्वीकार करते है। मैक्डूगल महोदय द्वारा प्रस्तुत सहज प्रवृत्तियों की सूची इस प्रकार है[९]—

१. पलायन की वृत्ति (Flight)
२. युयुत्सा की वृत्ति (Pugnacity)
३. विकर्षण की वृत्ति (Repulsion)
४. जिज्ञासा की वृत्ति (Curiosity)

---

६. रस सिद्धान्त : पुनर्विवेचन, पृ० २१५।

7. Drever : Instincts in Man; Introuduction to the Psychology of Education, Chapter IV.

8. (i) Related to physical preservation.
   (ii) Relation with others
   (iii) Related to play activities.
   —Psychology, R. S. Woodworth.

9. An outline of Psychology : W. Mc. Dougall.

५. काम वृत्ति (Pairing)
६. संतति पालन की वृत्ति (Parental)
७. आत्म समर्पण की वृत्ति (Submission)
८. आत्म गौरव (अहं) की वृत्ति (Self-assertion)
९. सामाजिकता की वृत्ति (Social Instinct)
१०. संग्रह वृत्ति (Acquisition)
११. निर्माण की वृत्ति (construction)
१२. हास्य की वृत्ति (Laughter)
१३. भोजनोपार्जन की वृत्ति (Food-Seeking)
१४. प्रार्थना (दैन्य) की वृत्ति (Appeal)

मैकडूगल महोदय का वर्गीकरण जेम्स महोदय के वर्गीकरण की अपेक्षा अधिक मनोवैज्ञानिक है, अत. इसे ही अधिक मान्यता प्राप्त है। इसमें ड्रेवर द्वारा उल्लिखित सहज प्रवृत्तियों का भी समावेश हो जाता[१०] है। भोजनोपार्जन की वृत्ति एव निर्माण की वृत्ति का भावों से कोई सम्बन्ध नही है अतः इनका साहित्य के अध्ययन मे कोई महत्व नहीं है।

भावना—हिन्दी मे भावना शब्द अंग्रेजी के सैन्टीमैंट शब्द के पर्याय के रूप मे ग्रहण किया जाता है। भावना की परिभाषा विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने अपने-अपने ढग से की है। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक शैण्ड के अनुसार भावना किसी वस्तु पर केन्द्रित भावात्मक प्रवृत्तियों की एक सुव्यवस्थित समष्टि है।[११] मैकडूगल के अनुसार भावना किसी आलम्बन के सम्पर्क से उत्पन्न उसके प्रति एक स्थायी चेष्टात्मक अभिवृत्ति है[१२]। एक अन्य स्थान पर वे लिखते है कि भावना एक अर्जित प्रवृत्ति है जिसका निर्माण धीरे-धीरे कई अनुभवो एव क्रियाओ से होता है[१३]। ड्रेवर महोदय के अनुसार भावना एक प्रवृत्ति है तथा इसमें भावात्मक प्रवृत्ति या प्रवृत्तियों का, विचार अथवा विचार समष्टि से साहचर्य होता है।[१४] मेरी स्टुअर्ट के अनुसार जब कोई वस्तु, पुरुष एवं धारणाएं भावो के विशिष्ट संगठित समूह का केन्द्र बन जाती हैं तब ऐसे समूह को हम भावना कहते हैं[१५]।

---

१०. प्रारम्भिक शिक्षा मनोविज्ञान ; डा० सरयू प्रसाद चौबे, पृ० १२।
११. मनोविज्ञान ; डा० यदुनाथ सिन्हा, पृ० २५१।
12. 'It (sentiment) is an enduring conative attitude towards some object induced by experience of the object.'
—An outline of Social Psychology : W. Mc Dougall.
१३. मनोविज्ञान ; डॉ० यदुनाथ सिन्हा, पृ० २५१।
14. Instinct in Man. Chapter IV, Drever.

वैलन टाइन के अनुसार 'सेंटीमेंट' किसी वस्तु अथवा पुरुष से सम्बद्ध भावात्मक प्रवृत्तियों तथा संवेदनाओं का लगभग एक स्थायी एवं संगठित रूप है।[16]

डा० राकेश गुप्त का मत है कि सेन्टीमेंट एक मानसिक प्रवृत्ति है, भाव जागृति की दशा नहीं। अतः जब सेन्टीमेंट विकसित होकर भाव-जागृति की दशा में परिणत होता है तो वह सेन्टीमेंट न रहकर इमोशन बन जाता है।[17] बी० एन० झा की मान्यता है कि 'भावना' शब्द साधारणतः व्यक्ति के संवेगों एवं भावों के कुल योग का प्रतिनिधित्व करने के अर्थ में प्रयुक्त होता है उनका मत है कि सहज प्रवृत्तियों के संकेत से प्रेरित होकर हम कुछ वस्तुओं का प्रत्यक्षीकरण करते हैं, मूल भाव उनके इर्द-गिर्द कार्य करते हैं, कभी-कभी एक ही भाव की बार-बार आवृत्ति होती है[18] जो भावना के रूप में परिवर्तित हो जाती है।

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर हम कह सकते हैं—(क) भावना भावात्मक आवेगों की संगठित क्रिया है, तथा इसी कारण यह जन्मजात न होकर बाद में विकसित होने वाली क्रिया है।

(ख) भावना किसी वस्तु के प्रति एक स्थायी चेष्टात्मक अभिवृत्ति है। यही कारण है कि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल 'सेन्टीमेंट' शब्द के लिए भाव, एवं 'इमोशन' के लिए मनोविकार शब्द का प्रयोग करते हुए कहते हैं—'वैर क्रोध का आचार

---

15. 'Certain objects or persons or ideals become the centre of a definitely organised group of emotions, and such a group is called a sentiment.'
—Modern Psychology and Education, Marry Stuart. p. 118.

16. 'A sentiment is a *more or less permanent* and organised system of emotional tendencies and impulses centred about some object or person'.
—Psychology . C. W. Valentine, p. 163.

17. "And also sentiment is only mental disposition and not an acute state of consciousness, for whenever it develops into an acute state of consciousness, it ceases to be sentiment and becomes emotion."
—Psychological Studies in Ras, Dr. Rakesh Gupta. p. 126.

18. "Guided by some instinctive disposition we perceive certain objects. The primary emotions play round them, sometimes it is one emotion playing over and over again, in other cases there are two or three."—
—Modern Educational Psychology, B N. Jha, p. 160-161.

या मुरब्बा है। जिससे हमें दुःख पहुँचा है उस पर यदि हमने क्रोध किया और यह क्रोध यदि हमारे हृदय में बहुत दिनों तक टिका रहा, तो वह वैर कहलाता है।—दुःख पहुँचाने के साथ ही दुःखदाता को पीड़ित करने की प्रेरणा करनेवाला मनोविकार क्रोध और कुछ काल बीत जाने पर प्रेरणा करनेवाला भाव (सैन्टीमेंट) वैर है।[१९]

(ग) भावना के मूल मे सहज प्रवृत्ति एवं भाव कार्य करते हैं। भावना कोई एक भाव विशेष नहीं है जिससे किसी विशेष अवसर पर कोई विशिष्ट अनुभूति होती हो। यह तो एक स्थिर भावपरक प्रवृत्ति है, जिसके कारण समय-समय पर अनेक भाव प्रकट होते हैं। उदाहरण के लिए यदि हम अपने देश भारत को प्रेम करते हैं तो उसके उत्थान से हमें हर्ष, पराजय से विषाद, उसको हानि पहुँचाने वाले के प्रति क्रोध, उस पर आने वाली विपत्ति को विचारकर आशंका, उसके विकास के लिए आशा आदि अनेक भावों में हम अपनी एक ही राष्ट्र प्रेम की भावना को व्यक्त करते है। अभिप्राय यह हुआ कि एक भावना मे अनेक भावों का समावेश होता है।

(घ) अंतिम निष्कर्ष है कि सैंटीमेंट एक मानसिक प्रवृत्ति है—तथा वह भाव जागृति की दशा में 'इमोशन' बन जाता है। किन्तु यह कथन अत्यन्त भ्रामक है। डा० गणपति चन्द्र गुप्त के अनुसार 'एक प्रेमी का हृदय प्रेमिका के भावी अनिष्ट की आशंका से चिन्ता-विभोर, उसके तिरस्कार पर क्रोध से अभिभूत और उसके दूर चले जाने पर शोक-विह्वल हो जाता है, तो क्या इन परिस्थितियों में जबकि उसके हृदय मे विभिन्न 'संचारी भाव' उद्दीप्त हो जाते हैं, उसका प्रेम स्थायी भाव नष्ट माना जायेगा! वस्तुतः संचारी भावों एवं स्थायी भावों के सम्बन्ध की सूक्ष्मता को हृदयंगम न कर सकने के कारण ही ऐसी बात कही गई है—कोरे शुष्क विचार पर आधारित भाव सैंटीमेंट का रूप ग्रहण नहीं कर सकता।[२०] मैक्डूगल महोदय ने भी सैंटीमेंट की परिभाषा करते हुए भावात्मकता को इसकी प्रमुख विशेषता के रूप मे स्वीकार किया है।[२१] अस्तु, भावना वह भावात्मक स्थिति है, जो वस्तु अथवा व्यक्ति-विशेष की आवृत्ति से एक स्थायी एवं शक्तिशाली रूप मे विकसित हो जाती है।

भावनाओं का वर्गीकरण—जैसा कि हम पीछे कह आये हैं हमारी सहज प्रवृत्तियाँ ही विभिन्न परिस्थितियों के प्रभाव एवं संस्कार से चारित्रिक वृत्तियो

---

१९. चिन्तामणि. रामचन्द्र शुक्ल, भाग १, पृ० १३८।
२०. हिन्दी काव्य में शृंगार परम्परा और बिहारी, पृ० ६—७।
21. An Introduction to Social Psychology : Mc Dougall. p. 105·

एवं भावनाओं के रूप में विकसित होती हुई अन्त में मूल भावों के रूप में व्यक्त होती है। इनमें सर्वाधिक महत्त्व भावनाओं (सेंटीमेंट) का है क्योंकि ये एक ओर तो हमारी सहज प्रवृत्तियों के चरम विकास को सूचित करती हैं तो दूसरी ओर ये ही हमारे भाव क्षेत्र को नियन्त्रित करती हैं। अतः भावनाओं का वर्गीकरण सामान्यतः सहज प्रवृत्तियों के आधार पर किया जाता है जोकि तालिका रूप में *इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है।*[22]

सहज प्रवृत्ति एवं भावनाएं

सहज प्रवृत्ति	भावनाएं
१. काम प्रवृत्ति	प्रणय भावना
२. युयुत्सा की प्रवृत्ति	१ द्वेष, २ प्रतिशोध, ३ क्रान्ति, ४. विद्रोह आदि की भावनाएं
३. पलायन की प्रवृत्ति	भीरुता
४. शरणागति-प्रदान प्रवृत्ति	सहानुभूति, करुणा
५. हास्य की प्रवृत्ति	विनोद, उपहास, व्यंग्य
६. विकर्षण की प्रवृत्ति	घृणा
७. जिज्ञासा की प्रवृत्ति	जिज्ञासा, कौतूहल
८. आत्म-दैन्य की प्रवृत्ति	भक्ति-भावना
९. संतति पालन की प्रवृत्ति	वात्सल्य, स्नेह, करुणा
१०. सम्रट्वृत्ति, आत्मगौरव की वृत्ति	अधिकार-भावना
११. साहचर्य की प्रवृत्ति	सख्य, मैत्री
१२. चिन्तन की प्रवृत्ति	निर्वेद

जैसा कि हम पीछे कह चुके हैं कि एक ही सहजप्रवृत्ति परिस्थिति-भेद से अनेक भावनाओं व प्रवृत्तियों के रूप में विकसित हो सकती है, अतः एक सहज प्रवृत्ति से सम्बन्धित विभिन्न भावनाओं को उपर्युक्त तालिका में एक ही वर्ग में स्थान दे दिया गया है।

बिहारी की सहज प्रवृत्तियाँ

हम कह चुके हैं कि सहज प्रवृत्तियाँ बाह्य वातावरण एवं परिस्थितियों के प्रभाव से पोषित, विकसित एवं उद्दीप्त होती हुई विभिन्न भावात्मक प्रवृत्तियों

२२. रस सिद्धान्त का पुनर्विवेचन ; डा० गुप्त, पृ० २२७ ।

का रूप धारण कर लेती हैं, जिनमे भावना (सेंटीमेंट) प्रमुख है। अतः हम कह सकते हैं कि बिहारी की सहज प्रवृत्तियाँ ही 'बिहारी-सतसई' मे विभिन्न भावनाओं के रूप मे अभिव्यक्त हुई हैं तथा बिहारी-सतसई मे व्यक्त इन्हीं भावनाओं के आधार पर हम बिहारी की सहज प्रवृत्तियों के सम्बन्ध मे बहुत कुछ जान सकते हैं।

(क) काम प्रवृत्ति (Sex-Instinct)—मन की क्रियाओ को गति एव प्रेरणा देने वाली मानसिक एवं शारीरिक शक्ति को काम वृत्ति कहते हैं। फ्रायड के अनुमार यह मनः शक्ति लिबिडो (Libido) है जो हमे भाँति-भाँति के विचार एवं कार्य करने के लिए प्रेरित करती है। जैसा कि तालिका मे स्पष्ट है, काम प्रवृत्ति ही प्रणय भावना (Love Sentiment) के रूप मे विकसित होती है।

प्रणय के तीन रूप माने जा सकते हैं—(क) आदर्शोन्मुख जिसमें प्रणय एक भावना मात्र न होकर एक कर्त्तव्य होता है, समाज के आदर्शों और नियमो से शासित होता है तथा जब कभी कर्त्तव्य और प्रेम मे द्वन्द्व उत्पन्न हो जाये तो कर्त्तव्य के सम्मुख प्रेम की बलि दे दी जाती है।

(ख) स्वच्छन्द प्रणय, जिसमे प्रणय जीवन का सर्वोपरि तत्व होता है तथा जिसके समक्ष परिवार, समाज और धर्म की समस्त मर्यादाए गौण होती हैं।

(ग) यथार्थोन्मुख प्रणय जिसमे प्रेम को एक विवशता के रूप में स्वीकार किया जाता है। आदर्शो व नियमो को सिद्धान्त रूप मे तो स्वीकार किया जाता है परन्तु व्यवहार में उनका पालन नही होता।

बिहारी ने अपनी सतसई मे मुख्यतः यथार्थोन्मुख प्रणय एव गौण रूप मे स्वच्छन्द प्रणय को ही अधिक मान्यता दी है। वे एक दोहे मे कहते हैं कि यदि प्रिय का सान्निध्य प्राप्त हो तो नरक की भी चिन्ता नही अर्थात् प्रेम के लिए स्वर्ग को भी या स्वर्ग प्रदान करने वाले धर्म को भी ठुकराया जा सकता है।[२३] एक अन्य दोहे मे वे कहते हैं कि प्रेम पयोधि में डूबने वाले ही ऊँचे व्यक्ति होते हैं तथा जो ऐसा नही करते वे पशु तुल्य होते है।[२४] इस प्रकार बिहारी यहाँ अप्रत्यक्ष रूप में प्रणय को ही जीवन का सबसे बड़ा कर्त्तव्य और धर्म मान लेते हैं जो कि

---

२३. जौ न जुगतिपिय मिलन की, धूरि मुकति मुँह दीन।
जौ लहियै संग सजन, तौ धरक नरक हूँ की न॥
—बिहारी रत्नाकर, दो० ७५।

२४. गिरि तैं ऊँचे रसिक-मन बूड़ें, जहाँ हजारु।
वहै सदा पसु नरनु कौ प्रेम पयोधि पगारु॥
—वही, दो० २५१।

स्वच्छन्द प्रणय भावना का परिचायक है। किन्तु ऐसा सर्वत्र नही है। अनेक दोहों मे वे प्रेम को एक औगुण,[२५] दुर्बलता[२६] भी मान लेते हैं।

बिहारी ने अपने नायक नायिकाओं मे प्रेम का चित्रण यथार्थपरक दृष्टि से किया है। उनके नायक किसी युवती की गोद से बच्चे को लेने के बहाने उसके वक्ष से अँगुली छुआ देते हैं।[२७] घर की दीवार के छेद मे से पड़ोसी की स्त्री के हाथ से हाथ मिलाकर सारी रात बिता देते है[२८] तथा पड़ोसी नायक और नायिका टट्टी की ओट मे तरसते हुए लम्बी साँस लेते है।[२९] उनके नायक की दृष्टि सदा युवतियो के उन्नत उरोजो एव प्रफुल्लित पयोधरो पर ही टिकी रहती है। स्वयं बिहारी के शब्दो मे उनके नायक की दृष्टि 'कुच-गिरि' पर चढकर ही इतनी थक जाती है कि वह उसके आगे नहीं बढ पाती। मुख की ओर बढने का प्रयास करती है किन्तु 'चिबुकगाड' तक पहुँचते-पहुँचते दम तोड देती है और फिर सदा के लिए उसी मे गिर जाती है।[३०]

कदाचित् बिहारी सतसई में निरूपित प्रणय भावना को हम बहुत उच्च कोटि की नही कह सकते, उसे कामुकता या अधिक से अधिक रसिकता की कोटि तक विकसित मान सकते है, किन्तु इसमे कोई सन्देह नही कि प्रणय भावना के मूल मे व्याप्त बिहारी की काम प्रवृत्ति अत्यधिक विकसित थी। बिहारी के सात सौ दोहो

---

२५. इक भीजैं, चहलै परैं, बूडैं, बहैं हजार।
किते न औगुन जग करै बै-नै चढती बार॥
—वही, दो० ४६१।

२६ क्यो बसियै, क्यो निबहियै, नीति नेह-पुर नाँहि।
लगालगी लोइन करैं, नाहक मन बँधि जांहि॥
—वही दो० ४०७।

२७. लरिका लैबे कै मिसनु लगरु मो ढिग आइ।
गयौ अचानक आंगुरी छाती छैलु छुवाइ॥
—वही, दो० सं० ३८६।

२८. सुख सौ बीती सब निसा, मनु सोए मिलि साथ।
मूका मेलि गहे, सु छिनु हाथ न छोड़े हाथ॥
—वही, दो० स० ५७१।

२९. चित तरसतु मिलत न बनतु बसि परोस कै बास।
छाती फाटी जाति सुनि टाटी-ओट उसास॥
—बिहारी रत्नाकर, दो० स० २६२।

३०. बिहारी सतसई : वैज्ञानिक समीक्षा, पृ० ७७।

में से ५०० से भी अधिक दोहों में प्रणय भावना अथवा शृंगार रस का ही चित्रण हुआ है तथा अनेक भक्ति सम्बन्धी दोहों में भी वे अपने भावों को स्पष्ट करने के लिए नारी-सौन्दर्य का ही आधार ग्रहण करते हैं। ये सब इस बात के स्पष्ट प्रमाण हैं कि बिहारी की सहज प्रवृत्तियों में काम प्रवृत्ति सर्वाधिक विकसित थी।

(ख) आत्म दैन्य की प्रवृत्ति—पीछे स्पष्ट किया जा चुका है कि आत्म-दैन्य की प्रवृत्ति ही व्यक्ति में भक्ति-भावना के रूप में विकसित हो जाती है, अतः बिहारी-सतसई में व्यक्त बिहारी की भक्ति भावना के मूल में उनकी आत्म दैन्य की प्रवृत्ति ही है इस लिए बिहारी की भक्ति भावना के आधार पर हम उनकी आत्म-दैन्य की प्रवृत्ति के सम्बन्ध में सहज ही अनुमान लगा सकते हैं।

बिहारी की भक्ति भावना का प्रथम परिचय तो हमें इस बात में मिलता है कि सतसई का प्रारम्भ ही बिहारी इस मंगलाचरण के साथ करते हैं कि जिसकी तन की झाईं पड़ने से श्याम हरित द्युति के हो जाते हैं, हे वे ही नागरी राधा, उनकी भव बाधा हरे।[31] कदाचित इसी दोहे के कारण कुछ विद्वानों ने बिहारी को राधावल्लभी घोषित किया है, किन्तु भक्ति सम्बन्धी शेष अधिकांश दोहे कृष्ण-परक हैं तथा उनमें राधा का उल्लेख बहुत कम है। शृंगारी दोहों में भी ऐसे प्रसंग बहुत कम हैं जिनमें राधा का चित्रण हो। अधिकांश दोहों में उनकी नायिका सामान्य युवतियाँ ही हैं। दूसरी ओर भक्ति सम्बन्धी दोहों में ईश्वर के लिए जिन नामों का प्रयोग किया है वे भी मुख्यतः कृष्ण के ही जीवन और चरित्र से सम्बन्धित हैं, यथा—गिरिधारी, गोपीनाथ, नन्दकिशोर, मनमोहन, गोपाल, जदुपति, कान्ह। अतः इसमें कोई सन्देह नहीं कि बिहारी के आराध्य कृष्ण ही थे, राधा नहीं। बिहारी को कृष्ण के लोकरंजक रूप की अपेक्षा उनका लोक-रक्षक रूप ही अधिक भाया, यही कारण है कि सतसई के भक्ति सम्बन्धी दोहों में बालकृष्ण की अपेक्षा यदुपति को अधिक स्थान मिला है।

भक्ति भावना की उद्दीप्ति का मूल कारण आराध्य के गुणों का बोध है जिसके कारण भक्त के मन में आराध्य के प्रति श्रद्धा उमड़ती है। बिहारी भी अनेक दोहों में कृष्ण की लीलाओं का वर्णन करते हुए उनके प्रति गहरी आस्था का परिचय देते हैं।[32] भक्ति में भक्त का लक्ष्य आराध्य के मन में अपने प्रति

---

३१. मेरी भव बाधा हरौ, राधा नागरि सोइ।
जा तन की झाईं परैं, स्यामु हरित-दुति होइ॥
—बिहारी रत्नाकर, दोहा सं० १।

३२. लोपे कोपे इन्द्र लौं रोपे प्रलय अकाल।
गिरिधारी राखे सबै गो, गोपी, गोपाल॥
—वही, दो० ५२१।

स्नेह, कृपा एवं दया की भावना को जागृत करता रहता है तथा इसके लिए वह अपने आराध्य का ध्यान अपनी निम्न एवं दयनीय परिस्थितियों की ओर खींचता है। बिहारी भी अपने अवगुणों के वर्णन द्वारा अपने आराध्य को अपनी दयनीय स्थिति का बोध कराना चाहते हैं। वे अपने आराध्य से कहते हैं—वैराग्य जिसे भजने को कहते हैं मैं गंवार उससे दूर भागता रहा, जिन विषयभोगों से वे दूर भागने को कहते हैं मैं उनमें ही भरमता रहा अब मेरा उद्धार कैसे होगा?[३३]

भक्ति की विकसित अवस्था में भक्त अपने आपको अपने आराध्य को समर्पित कर देता है। इस समर्पण की भावना को भक्ति शास्त्र के आचार्य बहुत महत्त्व देते हैं। बिहारी भी अपने आराध्य देव कृष्ण के समक्ष आत्म समर्पण करते हुए कहते हैं कि हे हरि मैं तुम से हजार बार प्रार्थना करता हूँ कि तुम्हारे दरबार में, अच्छी या बुरी जिस दशा में सम्भव हो पड़ा रहूँ।[३४] आत्म-समर्पण की चरमावस्था यह होती है जब भक्त अपने आपको आराध्य के प्रति पूरी तरह समर्पित करता हुआ उसके द्वारा प्रदत्त प्रत्येक सुख दुःख को सहर्ष स्वीकार कर लेता है। बिहारी भी कहते हैं ईश्वर ने जो दुःख अथवा सुख तुम को दिया है उसे अच्छी भांति अंगीकार करके शीश चढ़ा लो। जिससे तू सुख लेना चाहता है उसके लिये दुःख को अस्वीकार मत कर।[३५] इसी प्रकार एक अन्य दोहे में वे अपने आपको समझाते हुए कहते हैं कि तू इस स्थिति में दई-दई (हा दैव! हा दैव) क्यों कर रहा है। जो स्थिति दैव ने दी है उसको धैर्य से सहन कर, दुःख में लम्बी सांस न भर और सुख में स्वामी को न भूल।[३६]

भक्ति की अधिक घनिष्ठता में भक्त अपने आराध्य के इतनी निकट आ जाता है कि वह उस पर उपालम्भ पूर्ण व्यंग्य करने में भी संकोच नहीं

करता। बिहारी मे भी इस स्थिति का बोध मिलता है। वे एक दोहे में अपने आराध्य को उलाहना देते हुए कहते हैं कि हे रघुराय ! तुम किस दीन के बन्धु हुए और तुमने किस पतित को तारा? तुम तो झूठ मूठ ही 'दीनबधू' कहलाकर यूँ ही फूले फिरते हो।[३७]

भक्ति की अतिशयता में हम अपने आराध्य को कई बार चुनौती भी दे डालते हैं। बिहारी भी अपने आराध्य को चुनौती देते हुए कहते हैं—हे मुरारी! देखता हूँ अब आपकी प्रसिद्धि कैसे शेप रहती है, क्योंकि आपका पाला इस बार किसी सामान्य गिद्ध से नहीं पड़ा जो आप तार देंगे, इस बार तो आप मुझ महा-पापी से उलझे हैं।[३८] इसी प्रकार एक अन्य दोहे मे भी वे कहते हैं—हे गोपाल! मेरा अच्छा बुरा जो होगा मै भोग लूगा, तुम अपने रास्ते जाओ। तुम हठ न करो क्योंकि मुझे तारना बहुत कठिन है।[३९]

बिहारी द्वारा अपने आराध्य को दी गई यह प्रेमपूर्ण चुनौती सचमुच उनके हृदय की अगाध भावनाओं पर आधारित है। लेकिन कई बार जब बिहारी की प्रेमपूर्ण चुनौती भी व्यर्थ चली जाती है तो उनका हृदय क्षोभ से भर उठता है और वे यह कहने को विवश हो जाते हैं कि समय के फेर मे सबकी प्रकृति बदल जाती है, तभी तो इस दुष्प्रकृति कलिकाल मे परम दयालु ईश्वर भी दयाहीन हो गये हैं (जो मेरी नही सुनता)।[४०]

इस प्रकार हम देखते हैं कि यदि बिहारी के केवल भक्ति सम्बन्धी दोहे ही पढे जायें तो इसमें सन्देह नही कि कोई भी पाठक बिहारी को भक्त कवि मान बैठेगा। उनके भक्ति सम्बन्धी दोहों मे भक्ति-भावना उतनी ही तीव्र है जितनी

---

३७. बंधु भए का दीन के, को तारयौ रघुराइ।
तूठे तूठे फिरत हौ झूठे बिरद कहाइ॥
—बिहारी रत्नाकर, दो० सं ६१।

३८. कौन भांति रहिहै बिरदु अब देखिबी मुरारि।
बीधे मोसौ आइ कै गीधे गीधहिं तारि॥
—वही, दो० सं० ३१।

३९. ज्यों ह्वैहौं त्यौं होऊँगौ हौं, हरि, अपनी चाल।
हठु न करौ, अति कठिनु है मो तारिबौ गुपाल॥
—वही, दो० सं० ७०१।

४०. समै-पलट पलटै प्रकृति, को न तजै निज चाल।
भौ अकरुन करुना करौ इहिं कपूत कलिकाल॥
—वही, दो० सं० ६६१।

(ग) बिहारी की हास्य की प्रवृत्ति—हास्य की प्रवृत्ति विनोद उपहास व्यंग्य-इत्यादि वृत्तियो के रूप में अभिव्यक्त होती है। बिहारी सतसई में ऐसे अनेक दोहे विद्यमान हैं जिनमे बिहारी की हास्य प्रवृत्ति की स्पष्ट झलक मिलती है। उदाहरण के लिए एक दोहे मे वे वर्णन करते है कि ससुर महोदय तो वहू को छोटे हाथो वाली जानकर भिखारियो को अन्नदान करने का काम सौंपते हैं किन्तु हुआ उल्टा ही—सारा संसार उसके सौंदर्य के लोभ से भिक्षा माँगने के बहाने ही आने लगा।[४५] इसी प्रकार एक अन्य दोहे मे वे कथावाचक के सिद्धान्त और व्यवहार की असंगति एवं परिस्थिति की विषमता का चित्रण करके हास्य की उत्पत्ति करते है।[४६] ये दोहे शुद्ध हास्य के बहुत निकट माने जा सकते हैं।

सतसई मे बिहारी की उपहास वृत्ति का भी पर्याप्त परिचय मिलता है। बिहारी ग्रामीणों को बहुत हेय दृष्टि से देखते थे। एक दोहे में वे ग्रामीणों का उपहास करते हुए कहते हैं कि—हे अन्धे इत्र बेचने वाले ! इस गाँव में गुलाब के इत्र के ग्राहक कौन हैं ? सब हाथ मे लेकर, सूँघकर और सराहकर चुप रह गए हैं।[४७] इसी प्रकार एक दोहे में वे एक ज्योतिषी की भीरुता का सर्वथा निरपेक्ष रूप मे विश्लेषण करते हुए उसका उपहास करते हैं और कहते हैं कि—'ज्योतिषी के पुत्र होने पर लग्न मे पितृ मारक योग देखकर पहले तो वह बहुत दुःखी हुआ पर फिर जब पता चला कि साथ में जारज योग (पितातिरिक्त किसी अन्य पुरुष से उत्पन्न होने का योग) भी है तो वह मन ही मन बड़ा प्रसन्न हुआ।[४८] इन दोहों में हास्य अत्यन्त स्पष्ट रूप मे मुखरित हुआ है।

हास्य प्रवृत्ति का ही एक अन्य रूप है—व्यंग्य। बिहारी की भी अनेक उक्तियाँ व्यंग्यात्मक हो गई हैं। राजा जयसिंह शाहजहाँ की ओर से हिन्दुओं के

---

४५. बन देवौ सौंप्यौ ससुर, बहू थुरहथी जानि।
रूप रहचटै लगि लग्यौ मांगन सबु जगु आनि॥
—बिहारी रत्नाकर, दो० २६५।

४६. परतिय-दोषु पुरान सुनि लखि मुलकी सुखदानि।
कसु करि राखी मिश्र हूँ मुँह-आई मुसकानि॥
—वही, दो० सं० २६४।

४७. कर लै, सूँघि, सराहि हूँ रहे सबै गहि मौन।
गंधी अंध, गुलाल कौ गवई गाहकु कौनु॥
—वही, दो० स० ६२४।

४८. चित पित मारक-जोगु गनि भयौ, भयैं सुन, सोगु।
फिरि हुलस्यौ जिय जोइसी समझैं जारज-जोग॥

विरुद्ध युद्ध करते थे। बिहारी को यह अच्छा नहीं लगता था। वे एक दोहे में राजा जयसिंह को सचेत करने के लिए उन्हें बाज की उपमा से विभूषित करते हुए व्यग्य करते हैं—अरे पक्षी! जरा सोच इसमें न तेरा कोई स्वार्थ है, न ही यह कोई पुण्य का कार्य, तेरा श्रम निष्फल ही है। बाज! तू दूसरों के हाथ में पड़कर व्यर्थ ही पक्षियों को मार रहा है।[४९] किन्तु अनेक स्थलों पर बिहारी का व्यग्य तीक्ष्ण एव कटु हो जाने के कारण कटूक्ति में परिवर्तित हो गया है। वे एक दोहे में किसी महान गुणी पुरुष को निकृष्ट जनों की मडली में आया देखकर उसे सलाह देते हैं कि तू यहाँ से चला जा। क्या तू नहीं जानता यहाँ हाथियों का व्यापार करने वाला कोई नहीं है। यहाँ तो धोबी, ओड और कुम्हार बसते हैं।[५०] इसी प्रकार एक अन्य दोहे में किसी नीच व्यक्ति का सम्मान होने पर उसे कौए की उपमा देते हुए कहते हैं—हे कौए! तू दस दिन आदर पाकर भले ही अपना बखान करले पर यह सम्मान तब तक ही है जब तक श्राद्ध पक्ष है।[५१] एक अन्य दोहे में बिहारी दुष्टों की निन्दा एव भर्त्सना करने के लिए भी कटूक्ति का प्रयोग करते हैं। वे कहते हैं कि दुर्जनों को झुका देख कर विश्वास नहीं करना चाहिए, मौका पड़ने पर वे काटे की भाति पाव में लगकर प्राण ले सकते हैं।[५२]

इस प्रकार हम देखते हैं कि यद्यपि बिहारी-सतसई में हास्य के सभी मुख्य भेद मिलते हैं लेकिन व्यग्य और कटूक्तियों में वे विशेष रूप से सफल हैं। अस्तु, इसमें कोई सन्देह नहीं कि बिहारी में हास्य की प्रवृत्ति भी विद्यमान थी।

---

४९ स्वारथु, सुकृतु न, श्रमु वृथा, देखि विहंग, विचारि।
बाज पराऍं पानि परि तू पच्छीनु न मारि॥
—बिहारी रत्नाकर, दो० स० ३००।

५०. चल्यौ जाइ, ह्याँ को करै हाथिनु के व्यापार।
नहिं जानतु, इहि पुर बसैं धोबी, ओड, कुंभार॥
—वही, दो० स० ४३६।

५१. दिन दस आदरु, पाइ कै करि लै आप बखानु।
जौ लगि काग! सराध पखु, तौ लगि तौ सनमानु॥
—वही, दो० स० ४३४।

५२. न ए बिससियहि लखि नए दुरजन दुसह-सुभाइ।
आटैं परि प्राननु हरत काटैं लौ लगि पाइ॥
—बिहारी रत्नाकर, दो० स० ३११।

८ बिहारी के व्यक्तित्व का चारित्रिक पक्ष

व्यक्तित्व के चारित्रिक पक्ष में उन प्रवृत्तियों का समावेश होता है जिनका सम्बन्ध हमारी धार्मिक नैतिक व सामाजिक वृत्तियों से तथा व्यक्तिगत रूप से अंगीकृत आचरण के आदर्शों से है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से व्यक्तित्व के इस पक्ष के अनेक वर्ग-भेद किये गए हैं। डा० गणपति चन्द्रगुप्त ने मनोविज्ञान के आधार पर विचार करते हुए इन्हें निम्नांकित चार समूहों में विभाजित किया है[1]—

(१) प्रकृति एवं स्वभाव।
(२) चारित्रिक गुण—जैसे उदारता, सहिष्णुता आदि।
(३) बौद्धिक मान्यताएं—जैसे दृष्टिकोण, विचारधारा आदि।
(४) क्रियात्मक प्रवृत्तियां—जैसे रुचि, शौक आदि।

बौद्धिक मान्यताओं का समावेश व्यक्ति के जीवन-दर्शन के अन्तर्गत हो जाता है अतः इसका विवेचन हम बिहारी के जीवन-दर्शन सम्बन्धी अध्याय में करेंगे, यहाँ बिहारी के चारित्रिक पक्ष के तीन वर्गों—प्रकृति एवं स्वभाव, चारित्रिक गुण और क्रियात्मक प्रवृत्तियों पर ही विचार किया जाता है।

(१) प्रकृति एवं स्वभाव

किसी रचना के आधार पर रचयिता की प्रकृति की खोजना कठिन होते हुए भी असंभव नहीं है। विद्वानों का मत है कि कृतिकार की प्रकृति का उसकी शैली

१. साहित्य विज्ञान : डा० गणपति चन्द्रगुप्त, पृ० २३५।

पर थोड़ा बहुत प्रभाव अवश्य पडता है अत. शैली के आधार पर रचनाकार की *प्रकृति के सम्बन्ध मे कुछ सकेत अवश्य प्राप्त हो जाते हैं।* '*शान्त और गभीर प्रकृति के लेखकों की शैली मे प्राय गम्भीरता का गुण तथा अस्थिर एव चंचल* प्रकृति के लेखकों में शैलीगत चचलता दृष्टिगोचर होती है। यहा गम्भीरता एव चचलता से हमारा आशय न केवल शैली के प्रभाव की गम्भीरता एव चचलता से है अपितु उससे शैली की स्थिरता एव परिवर्तनशीलता का अर्थ भी लिया जा सकता है। जहा कुछ व्यक्तियों की शैली का रूप प्राय: सर्वत्र एक जैसा होता है, वहा *कुछ व्यक्तियों की शैली* सदा परिवर्तित होती रहती है। उदाहरण के लिए, हम एक ही युग के दो साहित्यकारों—श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' एव श्रीमती महादेवी वर्मा के *काव्य* को ले सकते है। जहा महादेवी *वर्मा की काव्य शैली प्रारम्भ से लेकर अब तक प्राय. अपरिवर्तित एव एक रूप* रही है, वहा निराला की शैली समय-समय पर विभिन्न रूप ग्रहण करती रही है। ·······हमारे विचार मे इस परिवर्तन शीलता के मूल में कवि की प्रकृतिगत चचलता को स्वीकार किया जा सकता है।'[2] यदि हम इस दृष्टि से देखें तो पायेंगे कि बिहारी ने अपने काव्य की रचना प्रारम्भ से लेकर अन्त तक मुक्तकों मे ही की है जो कि उनकी शैली की स्थिरता का द्योतक है। इसी प्रकार काव्य की शब्दावली मे भी अधिक परिवर्तन दृष्टिगोचर नही होता। अत यह माना जा सकता है कि बिहारी शान्त एव गम्भीर प्रकृति के व्यक्ति थे।

स्वभाव—विभिन्न मनोवैज्ञानिक स्वभाव के आधार पर व्यक्तियो को चार वर्गों मे विभाजित करते हैं—(१) प्रफुल्ल, (२) उदास, (३) चिडचिडे और (४) अस्थिर[3]। प्रफुल्ल उन्हे कहा गया है जो सदैव प्रफुल्ल और प्रसन्न रहते हैं। वे हमेशा आशावादी होते है तथा किसी चीज को गम्भीरता पूर्वक नही लेते। जो व्यक्ति सदैव उदास और खिन्न रहते है, वे जीवन के प्रति निराशावादी होते हैं तथा जो निरन्तर भावात्मक उदासी से पीडित रहते हैं उन्हे 'उदास' कहा गया है। इसी प्रकार जो व्यक्ति सदैव चिडचिड़े रहते है, दिमाग गरम, कुछ न कुछ तमाशा हर वक्त बनाये रहते हैं, न उनमे प्रसन्न होने की प्रवृत्ति होती है और न खिन्न होने की, उन्हे चिडचिडा कहा गया है। ऐसे व्यक्ति प्राय. लडने के अवसर खोजते रहते हैं। 'अस्थिर' की श्रेणी मे उन व्यक्तियों को रखा गया है जो अकारण क्षण मे प्रफुल्ल और क्षण मे उदास हो जाते हैं। इनका मिज़ाज सतुलित नही रहता तथा इनको भावों के दौरे से आते रहते हैं।

---

२. साहित्य की शैली, डा० गणपतिचन्द्र गुप्त पृ० २३५।
३ मनोविज्ञान, डा० यदुनाथ सिन्हा, पृ० ३३८।

हम ऊपर कह चुके हैं कि बिहारी शान्त एव गम्भीर प्रकृति के व्यक्ति थे अतः निश्चय ही उनकी गणना 'चिड़चिडे' स्वभाव वाले व्यक्तियो के वर्ग के अन्तर्गत तो बिल्कुल नही की जा सकती। बिहारी की रसिक प्रधान प्रवृत्ति तथा उनकी विनोदप्रियता इस बात की ओर इगित करती है कि बिहारी की गणना 'प्रफुल्ल' स्वभाव वाले व्यक्तियो के अन्तर्गत की जा सकती है। बिहारी सतसई मे अनेक ऐसे दोहे विद्यमान है जिनमे बिहारी के जीवन के प्रति आशा वादी दृष्टिकोण का परिचय मिलता है। उदाहरण के लिए वे एक दोहे मे कहते हैं—'हम बिछुड़ गए तो क्या हुआ, मेरा मन तो तुम्हारे ही साथ है। पतग उडकर भले ही कितनी ही दूर चली जाए, किन्तु उसकी डोरी तो आखिर उडाने वाले के हाथ मे ही रहती है।'[४] इसी प्रकार वे एक अन्य दोहे मे कहते हैं—'जिस आक का जग मे कोई भी सम्बन्धी नही, वही ग्रीष्म में हरा-भरा होकर फूलता-फलता है।'[५] ये सब वर्णन जीवन के प्रति बिहारी के आशावादी दृष्टिकोण के परिचायक होने के कारण इस बात की पुष्टि करते है कि बिहारी 'प्रफुल्ल' स्वभाव के व्यक्ति थे।

एक दोहे में बिहारी कहते हैं—'समय के फेर से तोता पिंजरे मे प्यासा मर रहा है जबकि बलि प्रदान करने के लिए कौए को बार-बार आदर पूर्वक बुलाया जा रहा है।'[६] कुछ विद्वान ऐसे वर्णनो के आधार पर बिहारी को जीवन के प्रति निराशावादी भी घोषित कर सकते हैं। किन्तु हमारे विचार मे यहा 'समय का फेर' शब्द निराशा मे भी आशा की विद्यमानता का सूचक है अर्थात् इस दोहे का आशय यह भी लगाया जा सकता है कि चूंकि समय के फेर से आज भले ही उपेक्षा हो रही है किन्तु कल फिर सम्मान होने लगेगा। इसकी पुष्टि इससे भी होती है कि स्वयं बिहारी एक अन्य दोहे में कहते हैं कि—'काक! तू दस दिन सम्मान पाकर भले ही अपनी महत्ता का गुणगान कर ले, किन्तु तेरा यह सम्मान

---

४. कहा भयौ, जो बीछुरे, मो मन तोमन साथ।
उड़ी जाहु कित हौ तऊ, गुडी गुडायक हाथ॥
—बिहारी रत्नाकर, दो० सं० ५७।

५. जाकैं एकाएक हूँ जग ब्यौसाइ न कोइ।
सो निदाघ फूलै फरै आकु डहडहौ होइ॥
—वही, दो० स० ४७१।

६ मरतु प्यास पिंजरा-परयौ सुआ समै का फेर।
आदरु दै दै बोलियतु बाइस बलि की बेर॥
—बिहारी रत्नाकर, दो० ४३५।

तभी तक है जब तक कि श्राद्ध पक्ष है।[७] अत. इसमे कोई सन्देह नही कि बिहारी का जीवन के प्रति आशावादी दृष्टिकोण ही था। अस्तु, सभी पक्षों पर विचार करते हुए कहा जा सकता है कि बिहारी 'प्रफुल्ल' स्वभाव के व्यक्ति थे।

(२) चारित्रिक गुण

'बिहारी-सतसई' मे बिहारी के निम्नाकित चारित्रिक गुण अप्रत्यक्ष रूप मे उद्भासित हुए हैं—

(क) उदारता—कुछ व्यक्ति चमडी जाये पर दमडी न जाये जैसी प्रवृत्ति के होते है, वे अपने पास लाखो रुपये होते हुए भी ऐसा जीवन व्यतीत करेगे मानो वे दुनिया के निर्धनतम व्यक्ति हो। पर बिहारी धन के सम्बन्ध मे बहुत उदार थे। इसीलिए जहा वे एक ओर कजूस व्यक्तियो का उपहास करते हैं,[८] वहा दूसरी ओर यह परामर्श देते है कि यह नीति नही है कि धन जोडने के लिए कोई अपने आपको गलाए, सुखाए, हा, यदि खाने-खर्चने के बाद जुडता हो तो भले ही कोई करोडो जोडे।[९] स्पष्ट है कि बिहारी लोभी या कजूस न होकर उदार व्यक्ति थे। वे जब अपने आश्रयदाता के कतिपय गुणो की प्रशसा करते हैं तो वे उनकी दानवीरता या उदारता की प्रशसा किये बिना नही रहते—

चलत पाइ निगुनी गुनी धनु, मनि-मुतिय-माल।
भेंट होत जयसाहि सौं, भागु चाहियतु भाल॥[१०]

(ख) विनम्रता—बिहारी की विनम्रता का परिचय हमे उनके भक्ति सम्बन्धी दोहो मे मिलता है। एक दोहे मे वे अपने प्रभु से निवेदन करते है कि हे गोपीनाथ आप अपने मन को वैसा ही बना लीजिए जैसा कि आपने अन्य पतितो के समूहों के

---

७. दिन दस आदरु पाइकै करि लै आपु बखानु।
जौ लगि काग ! सराधपखु, तौ लगि तौ सनमानु॥
—बिहारी रत्नाकर, दो० स० ४३४।

८. कन दैवौ सौंप्यौ ससुर, बहू थुरहथी जानि।
रूप-रहचटैं है लगि लग्यौ, न मागन सबु जगु आनि॥
—वही, दो० सं० २६५।

९. मीत न नीति गलीतु है जौ धरियै धनु जोरि।
खाऐं खरचैं जौ जुरै, तौ जोरियै करोरि॥
—वही, दो० ४८१।

१०. वही, दो० सं० १५६।

उद्धार के समय बनाया था। मेरे भी गुण-अवगुणों के समूह पर विचार मत कीजिए।[११] इसी प्रकार एक अन्य दोहे में वे कहते हैं कि हरि ! मैं तुमसे हजार बार यही प्रार्थना करता हूँ कि जैसे तैसे तुम्हारे दरबार में बुरे कर्मों से डरा हुआ पड़ा रहूँ।[१२] बिहारी की विनम्रता का इससे बड़ा और प्रमाण क्या होगा कि प्रभु का स्मरण करते हुए वे अपने को पापी कहने से भी नहीं चूकते और उनसे दीनतापूर्ण स्वर में प्रार्थना करते हैं कि जिस प्रकार आपने अनेक पापियों को मोक्ष दिया मुझे भी मोक्ष प्रदान कर दीजिए।[१३]

(ग) निष्कपटता—बिहारी भक्ति में झूठे आडम्बरों को कोई महत्त्व नहीं देते थे। उनके विचार में माला जपने से या तिलक छापा लगाने से एक भी काम नहीं हो सकता, यदि मन कच्चा है तो नृत्य करना व्यर्थ है—राम सच्चे भक्तिभाव वाले पर ही प्रसन्न होते हैं।[१४] इसी प्रकार एक स्थान पर वे कहते हैं—मैंने अपने हृदय रूपी हमाम को तीनों प्रकार के तापों—आधि भौतिक, आधि दैविक एवं आध्यात्मिक—से तप्त कर रखा है जिससे कि यदि प्रभु कभी इधर से आ निकलें तो इसे देखकर पुलकित एवं करुणार्द्र हो जाए।[१५] इस प्रकार की अभिव्यक्ति कृत्रिम न होकर बिहारी के सरल एवं निष्कपट हृदय की सहज स्वाभाविक अनुगूँज है।

---

११. कीजै चित सोई, तरे जिहिं पतितनु के साथ।
मेरे गुन-औगुन-गननु गनौ न, गोपीनाथ॥
—बिहारी रत्नाकर, दो० सं० २२१।

१२. हरि, कीजति, बिनती यहै तुम सौं बार हजार।
जिहिं तिहिं भाँति डर्‌यौ रह्यौ पर्‌यौ रहौं दरबार॥
—वही, दो० सं० २४१।

१३. मोहू दीजै मोषु, ज्यौं अनेक अधमनु दियौ।
जौ बाँधै ही तोषु, तौ बाँधौ अपनैं गुननु॥
—वही, दो० सं० २६१।

१४. जपमाला, छापैं, तिलक, सरै न एकौ कामु।
मन-काँचै नाचै बृथा, साँचै राचै रामु॥
—बिहारी रत्नाकर, दो० सं० १४१।

१५. मैं तपाइ त्रय ताप सौं राख्यौ हियौ हमामु।
मति कबहूँक आऐं यहाँ पुलकि पसीजैं स्यामु॥
—वही, दो० सं० २८१।

(ग) स्पष्टवादिता—बिहारी-सतसई में अगर बिहारी का कोई चारित्रिक गुण स्पष्ट रूप से उभरा है तो वह है—स्पष्टवादिता। कुछ व्यक्तियों के नाम बहुत सुन्दर होते हैं पर गुणों का उनमें अभाव रहता है। ऐसे व्यक्ति के लिए बिहारी का कहना है—गुणों के अभाव में बड़ा नाम पाकर बड़ा न समझना चाहिए। धतूरे को भी कनक (सोना) कहा गया है पर क्या उससे आभूषण गढ़े जा सकते हैं?[16] इसी प्रकार नीच व्यक्तियों की तुलना गेंद से करते हुए वे कहते हैं जितना उनके सिर पर मारा जाय उतने ही वे अधिक ऊँचे उठते हैं।[17]

दरबारी कवि प्रायः अपने आश्रयदाता की अतिरंजित प्रशंसा करते हुए उनके दोषों को भी गुण सिद्ध करने का प्रयास करते हैं किन्तु बिहारी ने अपने आश्रयदाता राजा जयसिंह की सर्वत्र ही प्रशंसा नहीं की है अपितु अनेक प्रसंगों में उन पर सीधे व्यंग्य भी किये हैं। बिहारी के आश्रयदाता जब नवविवाहिता के मोहपाश में बंध कर राजकार्यों से विरक्त रहने लगे तो बिहारी उन्हें चेतावनी देते हुए कहते हैं—हे भौरे, अभी इस कली में न तो पराग है, न रस का माधुर्य, अभी से तू इसके आकर्षण में बंध गया तो आगे तेरा क्या हाल होगा![18]

इसी प्रकार मिर्जा राजा जयशाह का शाहजहाँ की ओर से हिन्दुओं के विरुद्ध युद्ध करना बिहारी को अच्छा नहीं लगता था। इसी लिए वे अपने आश्रयदाता को बाज के माध्यम से समझाते हैं— हे बाज! दूसरे के हाथ में पड़कर तू पक्षियों (स्वजनों) को मत मार। हे विहग, विचार कर देख, यह न तो कोई अच्छा कार्य है और न ही इससे तेरा कोई स्वार्थ सिद्ध होता है, तू व्यर्थ का श्रम कर रहा है।[19]

---

१६. बड़े न हूजै गुननु बिनु बिरद-बड़ाई पाई।
कहत धतूरे सौं कनकु, गहनौ गढ़्यौ न जाइ॥
—बिहारी रत्नाकर, दो० स० १९१।

१७. नीच हियैं हुलसे रहै गहे गेंद के पोत।
ज्यौं ज्यौं माथैं मारियत, त्यौं त्यौं ऊँचे होत॥
—वही, दो० स० ४९१।

१८ नहिं परागु, नहिं मधुर मधु, नहिं बिकासु इहिं काल।
अली, कली ही सौं बंध्यौ, आगैं कौन हवाल॥
—बिहारी रत्नाकर, दो० ३८।

१९ स्वारथु, सुकृतु न, श्रमु वृथा, देखि, विहग, बिचारि।
बाज, पराए पानि परि तू पच्छीनु न मारि॥
—वही, दो० ३००।

बिहारी की स्पष्टवादिता केवल अपने आश्रयदाता तक ही सीमित नही है, वे भगवान को भी स्पष्ट शब्दों में ताड़ने से नहीं चूकते—हे रघुनाथ ! तुम किस दीन के बन्धु सिद्ध हुए हो और किसका तुमने उद्धार किया है ? लोगो ने यो ही तुम्हें 'दीनबंधु' की उपाधि दे रखी है, जिसे पाकर तुम फूले-फूले फिर रहे हो।[२०]

(ङ) सहिष्णुता एवं निस्पृहता—बिहारी के भक्ति सम्बन्धी दोहों में बिहारी के सहिष्णु होने का भी परिचय मिलता है। एक दोहे मे वे कहते हैं—'तू दु ख मे लम्बे-लम्बे सास मत ले और सुख मे ईश्वर को मत भूल। अब दैव ! दैव ! करने में क्या रखा है ? जो कुछ ईश्वर ने दिया है उसे स्वीकार कर'।[२१] एक अन्य दोहे में भी कहते हैं—जो कुछ उसने दिया है, उसे भली-भाति सिर चढाकर स्वीकार कर ले, जिससे तू सुख लेना चाहता है उसके दिए दु ख को भी मत लौटा।[२२]

अपनी प्रियतमा से बिछुड जाने पर बिहारी कहते हैं—हम विछड गए तो इससे क्या हुआ। मेरा मन तो तुम्हारे साथ है। पतग उड़कर कितनी ही दूर चली जाए पर उसकी डोर तो उड़ाने वाले के हाथ मे ही रहेगी।[२३] इसी प्रकार एक अन्य दोहे में बिहारी कहते हैं—'कोई चाहे करोडों का सग्रह करे और कोई लाखों या हजारों पर ही सन्तोष कर ले किन्तु मेरे लिए तो सबसे बडी संपत्ति यदुपति ही हैं, जो सब सकटो के दूर करने वाले हैं'। ये उक्तियाँ कदाचित बिहारी की निस्पृहता के गुण की सूचक हैं।

(च) स्वाभिमान—बिहारी स्वाभिमानी भी थे, इसी लिए उन्होंने अपने

---

२०. वधु भए का दीन के, को तारयौ रघुराइ।
तूठे तूठे फिरत हौ झूठे विरद कहाइ॥
—वही, दो० सं० ६१।

२१. दीरघ सास न लेहु दुख, सुख साईं हि न भूलि।
दई दई क्यौं करतु है, दई दई सु कबूलि॥
—वही, दो० ५१।

२२. दियौ, सु सीस चढाइ लै आछी भाति अएरि।
जापै सुखु चाहतु लियौ, ताके दुखहिं न फेरि॥
—वही, दो० स० ८१।

२३. कहा भयौ, जो बीछुरे, मो मनु तोमन-साथ।
उड़ी जाउ कित हूँ, तऊ गुड़ी उड़ाइक हाथ॥
—बिहारी रत्नाकर, दो० सं० ५७।

आपको आश्रयदाता के सम्मुख भी कहीं नहीं गिराया। ७०० दोहों की सतसई में अपने आश्रयदाता पर केवल सात दोहों की रचना करना तथा अपनी सतसई का नामकरण अपने आश्रयदाता पर न करना इस बात का प्रमाण है कि वे उन लोगों से भिन्न थे जो आश्रयदाता की जी-हजूरी एवं चापलूसी में ही अपना हित समझते है। बिहारी आत्म-सम्मान के प्रति बहुत सतर्क थे। इसीलिए समाज मे गुणहीन व्यक्तियो का सम्मान होते देखकर उनके स्वाभिमान को बहुत ठेस पहुँचती है। वे कहते हैं—हे कौए! तू दस दिन आदर पाकर अपना बखान कर ले, पर मत भूल तेरा यह सम्मान तभी तक है जब तक श्राद्धपक्ष है।[२४]

(छ) **विनोद-प्रियता**—चाहे भक्ति का प्रसग हो या शृगार का, बिहारी की विनोद-प्रियता की झलक सर्वत्र मिलती है। एक दोहे मे वे भगवान को उपालम्भ देते हुए कहते है—हे भगवान! आपने अच्छी अनसुनी कर रखी है। मेरी सारी पुकार व्यर्थ हो गई। लगता है कि आपने एक बार हाथी को तार कर ही हमेशा के लिए इस धन्धे से छुट्टी पा ली है।[२५] इसी प्रकार वे एक अन्य दोहे मे कहते है—'हे मुरारी! अब देखते है कि तुम्हारी यह 'तारने वाले' की उपाधि कैसे बचती है, यह कोई ऐसा वैसा गीध नही जो तुम तार दोगे— इस बार तुम्हारा पाला मुझ से पड़ा है।[२६] भक्ति के ही एक अन्य प्रसग मे वे कहते हैं—कन्हैया पहले तो तुम थोड़े से ही गुणो को देख कर प्रसन्न हो जाते थे, पर अब उस आदत को भूल गए। ऐसा लगता है कि तुम भी आजकल के दानियो जैसे हो गए हो।[२७]

---

२४. *दिन दस आदरु पाइ कै करि लै आपु बखानु।*
जौ लगि काग! सराधपखु, तौ लगि तौ सनमानु॥
— बिहारी रत्नाकर, दो० स० ४३४।

२५. नीकी दई अनाकनी, फीकी परी गुहारि।
तज्यौ मनौ तारन-बिरदु बारक बारनु तारि॥
—वही, दो० ११।

२६. कौन भाँति रहिहै बिरदु अब देखिवी मुरारि।
बीधे मोसौं आइ कै गीधे गीधहि तारि॥
—वही, दो० सं० ३१।

२७. थोरें ही गुन रीझते, बिसराई वह बानि।
तुमहूँ, कान्ह, मनौ भए आजकाल्हि के दानि॥
—वही, दो० ६८।

शृंगार के प्रसंगों में तो बिहारी के नायक-नायिका अनेक स्थलों पर हास्य की सृष्टि करते हैं। सुन्दरी के मुख पर दिठौना लगा देखकर प्रिय ने मुस्कराकर कहा,—'चन्द्रमुखी जी ! चाँद बनने में थोड़ी सी कसर थी, वह भी अब पूरी हो गई।'[२८] इसी प्रकार एक दोहे में नायक नायिका को मनाने आता है पर शीघ्रता में अन्य स्त्री की अंगूठी उतारना भूल जाता है। नायिका की सखी उसे उसकी इस भूल का अहसास कराती है—'आप इसे मनाने आए हैं सो तो अच्छा है, पर कृपा करके अपनी गुप्त प्रेमिका की यह अंगूठी छिगुनी के छोर से उतार दीजिए, कहीं उसने देख लिया तो बुरा होगा।'[२९]

भक्ति एवं शृंगार के अतिरिक्त कई अन्य प्रसंगों में भी बिहारी की विनोद-प्रियता की झलक मिलती है। एक कंजूस ससुर का मजाक उड़ाते हुए कहते हैं कि उसने तो बहू को छोटे हाथ वाली समझ कर भिखारियों को अनाज डालने का काम सौंपा था, जिससे अनाज कम खर्च हो, किन्तु हुआ उलटा ही—सारा संसार उसके सौन्दर्य के लोभ में भिक्षा मांगने के बहाने आने लगा।[३०]

इस प्रकार हम देखते हैं कि बिहारी में उदारता, विनम्रता, निष्कपटता, स्पष्टवादिता, सहिष्णुता और आत्म-सम्मान जैसे चारित्रिक गुण तो थे ही, वे विनोदप्रिय भी कम नहीं थे।

(३) क्रियात्मक प्रवृत्तियाँ

इसके अन्तर्गत मुख्यतः रुचि और शौक आते हैं।

(क) रुचि (Interest)—मनोविज्ञान के अनुसार रुचि किसी वस्तु के प्रति सम्बन्ध जोड़ने वह वाली मानसिक संरचना है जिसके द्वारा व्यक्ति किसी वस्तु से अपना सम्बन्ध समझता है। इस प्रकार रुचि एक मानसिक क्रिया न होकर एक व्यवस्था है। इस मानसिक व्यवस्था का निर्माण अनुभव द्वारा होता है। यह

---

२८ पिय तिय सौं हँसि कै कह्यौ, लखै दिठौना दीन।
चंदमुखी, मुखचन्द्र तैं भलौ चंदु-समु कीन॥
—बिहारी-रत्नाकर, दो० ४३।

२९. आए आपु, भली करी, मेटन मान-मरोर।
दूरि करौ यह, देखिहै छला छिगुनिया-छोर॥
—वही, दो० १३६।

३०. कन दैबौ सौंप्यौ ससुर, बहू थुरहथी जानि।
रुप रहचटैं लगि लग्यौ मांगन सबु जगु आनि॥
—बिहारी रत्नाकर, दो० सं० २६५।

अनुभव मानसिक संस्कार के रूप में मानसिक व्यवस्था का अंग बन जाता है। इसी प्रकार अन्य अनुभवों द्वारा मानसिक व्यवस्था का निर्माण होता है—इसी मानसिक व्यवस्था के अनुसार व्यक्ति को कुछ वस्तुएँ रुचिकर लगती हैं एवं कुछ अरुचिकर। अनुभव के साथ-साथ मानसिक व्यवस्था के निर्माण में व्यक्ति के जन्मजात प्रेरकों का भी प्रमुख स्थान है क्योंकि बालक सबसे पहले इन्हीं की प्रेरणा से व्यवहार करता है और जो वस्तुएं इन प्रेरकों को संतुष्ट करती हैं उन्हीं पर व्यक्ति की रुचि केन्द्रित हो जाती है। इस प्रकार 'रुचि वह मानसिक व्यवस्था है जिसके कारण हमें कोई वस्तु अच्छी या बुरी लगती है।[31]

(१) नागरिक रुचि —बिहारी एक दोहे में कहते हैं—'अरे अन्धे गंधी ! इस ग्रामीण मण्डली में तेरे गुलाब जल का कौन ग्राहक है। हाथ में ले कर, सूंघकर और सराह कर भी ये सब के सब चुप्पी लगाये बैठे हैं।'[32] इसी प्रकार दूसरे दोहे में वे कहते हैं—'हे गुलाब यहाँ वे नागर नहीं हैं, जिनके आदर से तेरी आब बढ़ी हुई है। इस गवारों की बस्ती में तू फूला हुआ भी अनफूला हो रहा है।[33] एक अन्य दोहे में कहते हैं—'सब के सब लोग नागरता के नाम पर ताली बजा-बजा कर हसते हैं। गंवारों के गाँव में जाने से गुण का सारा गर्व जाता रहा।[34] स्पष्ट है कि बिहारी नागरी रुचि के व्यक्ति थे तथा उनकी ग्रामीणों के प्रति न केवल अरुचि थी अपितु वे उनके प्रति हेय दृष्टिकोण भी रखते थे। बिहारी अपने 'नागर प्रेम' के कारण राधा को भी नागरी बना डालते हैं—

मेरी भव-बाधा हरौ, राधा नागरि सोइ।
जा तन की झाईं परैं, स्यामु हरित-दुति होइ ॥[35]

---

३१. सामान्य मनोविज्ञान : रामबाबू गुप्त, पृ० २३०।

३२ कर लै, सूघि, सराहि हूँ रहे सबै गहि मौनु।
गधी अध, गुलाब कौ गवई गाहकु कौनु ॥
—बिहारी रत्नाकर, दो० स० ६२४।

३३. वे न इहां नागर, बढी जिन आदर तो आब।
फूल्यौ अनफूल्यौ भयौ गवई-गाव, गुलाब ॥
—वही, दो० स० ४३८।

३६. सबै हसत करतार दै नागरता कै नाव।
गयौ गरबु गुन कौ सरबु गएँ गवारै गाँव ॥
—वही, दो० सं० २७६।

३५. बिहारी-रत्नाकर, दो० स० १।

(२) प्रिय ऋतु—बिहारी सतसई मे वसंत, ग्रीष्म, वर्षा, शरद आदि सभी ऋतुओं का किसी-न-किसी प्रसग में वर्णन अवश्य हुआ है। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि बिहारी जहाँ एक ओर ग्रीष्म ऋतु की प्रचण्डता से बहुत भयभीत थे तथा यह मानते थे कि उसकी प्रचण्डता से व्याकुल हो सर्प, मृग, मयूर बाघ भी अपना वैर भुलाकर इकट्ठे रह सकते हैं,[३६] वहां दूसरी ओर उन्हे शरद ऋतु मे विशेष लगाव था। वे एक दोहे मे शरद ऋतु की प्रशंसा करते हुए कहते हैं—हे शरद रूपी प्रतापी नरेश ! तुमने आकर जगत को सुखी बना दिया।[३७] एक अन्य दोहे मे वे शरद को सुन्दरी के रूप में चित्रित करते हुए कहते हैं—'शरद सुन्दरी के कर और चरण अरुण-कमल हैं, दृग खंजन हैं और उसका मुख चन्द्र है भला ! वह समय पर आकर किसे आनन्दित नही करती !'[३८] स्पष्ट है कि शरद ऋतु ही बिहारी की प्रिय ऋतु थी और यही कारण है कि उन्होंने सतसई में जहां वसत का चार प्रसंगों में,[३९] ग्रीष्म ऋतु का छ प्रसंगो मे,[४०] वर्षा का तीन प्रसंगो[४१] मे वर्णन किया है वहा शरद ऋतु के चित्रण के लिए उन्होंने दस[४२] प्रसंग ढूँढ निकाले हैं।

(३) प्रिय त्योहार—बिहारी सतसई में केवल दो त्योहारों का उल्लेख है —होली और तीज। इनमे से भी तीज के पर्व का तो केवल एक ही प्रसंग[४३] में

---

३६. कहलाने एकत बसत अहि मयूर, मृग बाघ।
जगतु तपोवन सौ कियौ दीरघ-दाघ निदाघ ॥
—वि० रत्नाकर, ४८६।

३७. घन-घेरा छुटि गौ, हरपि चली चहूँ दिसि राह।
कियौ सुचैनौ आइ जगु सरद-सूरनरनाह ॥
—वही, दो० सं० ४८५।

३८. अरुन सरोरुह-कर-चरन, दृग-खंजन, मुख-चंद।
समै आइ सुंदरि सरद काहि न करति अनंद ॥
—वही, दो० सं० ४८७।

३९. वही, दो० स० ४७४, ४७६, ४८८, ५७४।
४०. वही, दो० स० १७२, २४४, २६६, ४७१, ४८८, ४८६।
४१. वही, दो० सं० १७५, ४१२, ५६३।
४२. वही, दो० सं० १७२, २६६, २६१, ३०४, ३४४, ४०६, ४८५, ४८७, ४६२, ४६७।
४३. वही, दो० सं० ३१५।

उल्लेख होकर रह गया है किन्तु होली का वर्णन पांच प्रसगो मे हुआ है। अतः कहा जा सकता है कि होली बिहारी का प्रिय त्योहार था।

(४) प्रिय जीव-जन्तु—कौन सा ऐसा पशु है जिसके नाम का उल्लेख बिहारी ने अपनी सतसई मे न किया हो! बिल्ली[४५] गाय[४६] घोड़ा,[४७] मृग[४८] बाघ,[४९] हाथी[५०] सभी तो है! कौन-सा पक्षी है जिसके नाम का उल्लेख करना वे भूल गये हैं—कबूतर[५१], तोता,[५२] कौआ,[५३] बाज,[५४] चिड़िया,[५५] चकोर,[५६] मयूर[५७] सभी तो हैं किन्तु बिहारी की दृष्टि बाघ, हाथी, कबूतर, तोते, सभी से फिसलकर आकर टिकती है तो एक छोटे से जीव—भ्रमर पर। उपर्युक्त सभी पशु-पक्षियो का उल्लेख सतसई मे मात्र एक दो स्थल पर होकर रह गया है पर भ्रमर का उन्होने सात[५८] प्रसगो मे उल्लेख किया है। कह सकते हैं कि भ्रमर ही बिहारी का प्रिय जन्तु था। पक्षियो मे कौए से उन्हे बेहद घृणा थी तथा तोते से सर्वाधिक सहानुभूति। कबूतर को वे सर्वाधिक सुखी जीव मानते थे।[५९]

(५) प्रिय पुष्प—बिहारी सतसई मे मालती का दो प्रसगो मे[६०] सोन जूही

---

४४. बिहारी रत्नाकर, दो० स० १५३, २८०, ३५२, ५०३, ६३३।
४५. वही, दो० सं० ८५।
४६. वही, दो० स० १२८।
४७ वही, दो० सं० १४५, १७८।
४८. वही, दो० स० ५०, ६७।
४९. वही, दो० स० ४८८।
५० वही, दो० स० ४३९।
५१. वही, दो० सं० ३७४, ६१९।
५२. वही, दो० स० ८५, ४३५।
५३. वही, दो० स० ४३४, ४३५।
५४. वही, दो० स० ३००।
५५. वही, दो० स० ३००।
५६. वही, दो० सं० २५८।
५७. वही, दो० स० ४८८।
५८. वही, दो० स० ३८, १२७, १४३, २५५, ३६९, ३८८, ४३७।
५९. वही, दो० स० ६१९।
६० वही, दो० स० ८, १२७,

का पाच[६१] प्रसंगो मे, कमल का तीन[६२] प्रसंगो मे, गुडहर के फूल का दो[६३] प्रसगो मे, चपा[६४] व केसर[६५] का एक-एक प्रसंग में तथा गुलाव[६६] का नौ प्रसगों में उल्लेख किया गया है। स्पष्ट है कि विहारी का प्रिय पुष्प गुलाव था तथा यह उनकी नागरी रुचि के अनुरूप भी है। गुडहर फूल उन्हें विशेप रूप से अप्रिय था।[६७]

(६) प्रिय रंग—सतसई मे श्वेत रग का लगभग आठ प्रसंगो मे,[६८] काले रंग का छ.[६९] प्रसंगों मे, सुनहरे व पीले रग का चार[७०] प्रसगों मे तथा लाल,[७१] नीले[७२] व धूपछाह[७३] रग का एक-एक प्रसंग मे वर्णन हुआ है। निश्चय ही बिहारी को श्वेत रग सर्वाधिक प्रिय था तथा यह उनकी नागरी रुचि के भी अनुकूल है।

(७) प्रिय परिधान—विहारी को अपनी को नायिका निर्वस्त्र देखना ही अधिक रुचिकर लगता है किन्तु फिर भी यदि वे उसे कोई परिधान पहनाना चाहेंगे तो यह निश्चय ही साड़ी ही होगी जिसका विहारी सतसई में लगभग पाच[७४] स्थलों पर उल्लेख किया गया है। चोली,[७५] एवं कचुकी[७६] और चुनरी[७७] के

---

६१. विहारी-रत्नाकर, दो० सं० ८, १३२, १९०, ३३०, ६१३।
६२. वही, दो० सं० ७८, ११८, ३३१।
६३. वही, दो० सं० २८२, ५६५।
६४. वही, दो० १४३।
६५. वही, दो० सं० १६९।
६६. वही, दो० सं० ८४, २५५, २५६, ३५४, ४३१, ४३७, ४३८, ४८३, ६९४।
६७. वही, दो० सं० २८२, ५६५।
६८. वही, दो० स० १०६, १८८, १८९, २३४, २७१, ३३०, ३४०, ४७८।
६९. वही, दो० सं० ९५, १२१, १५७, १८६, २७१, ५१५।
७०. वही, दो० सं० ८२, १०२, २७१, ३३०।
७१. वही, दो० सं० १६९।
७२. वही, दो० सं० २०७।
७३. वही, दो० सं० ७०।
७४. वही, दो० सं० १०६, १८८, ३४०, ४७८, ६०७।
७५. वही, दो० सं० १८८, १८९।
७६. वही दो० सं० १९०।
७७. वही, दो० सं० ६२६।

प्रति भी उनका आकर्षण था। किसी अन्य परिधान का सतसई में कोई उल्लेख नहीं है।

(८) प्रिय आभूषण – सतसई में माला[७८] का लगभग सत्रह स्थलों पर अंगूठी[७९] का पांच प्रसंगों में, पायल[८०] व नाक की कील[८१] का दो-दो प्रसंगों में तथा कुंडल[८२] का केवल एक प्रसंग में उल्लेख है। स्पष्ट है कि आभूषणों में माला बिहारी को सर्वाधिक प्रिय थी। इसके अतिरिक्त बिन्दी के प्रति भी बिहारी का विशेष आकर्षण था। जिसका वे सतसई में ९ स्थलों[८३] पर उल्लेख करते हैं।

(९) शौक—बिहारी सतसई में तीन[८४] प्रसंगों में पतंग का उल्लेख किया गया है, जिससे पता चलता है कि बिहारी को पतंग उड़ाने या उड़ाते हुए देखने का बहुत शौक था। इसके अतिरिक्त वे शराब[८५] व तम्बाकू[८६] के भी शौकीन थे, ऐसा अनुमान किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त कोई अन्य शौक बिहारी सतसई के द्वारा प्रकट नहीं होता। ●

---

७८. बिहारी रत्नाकर, दो० सं० ६०, १२२, १५६, २०४, २३७, २५२, ३०१, ३७६, ३७७, ३८०, ३९०, ४४६, ४५१, ५१३, ५४४, ६१६, ६६५।

७९. वही, दो० स० १२३, १३६, १३८, ३७९, ६११।

८०. वही, दो० स० २१२, ४४१।

८१. वही, दो० स० १४३, ६८४।

८२. वही, दो० स० १०३।

८३. वही, दो० स० १३७, १८०, २४८, २७१, ३२७, ३५५, ४४१, ६२६, तथा ६७९।

८४. वही, दो० सं० ५७, ३७३, ४२८।

८५. वही ,दो० स० ३६८, ३८७, ५३९।

८६. वही, दो० स० ६९९।

६ | बिहारी के व्यक्तित्व का प्रकार

१. व्यक्तित्व के प्रकार : सामान्य विवेचन

विश्व में प्रत्येक व्यक्ति का व्यक्तित्व दूसरे व्यक्ति के व्यक्तित्व से किसी-न-किसी दृष्टि से भिन्न होता है या दूसरे शब्दों में प्रत्येक व्यक्ति के व्यक्तित्व की कुछ निजी विशेषताएँ होती हैं। किन्तु साथ ही स्थूल रूप से विभिन्न व्यक्तियों के व्यक्तित्व में परस्पर थोड़ी बहुत समानता भी होती है। इसी समानता के आधार पर विभिन्न दार्शनिकों एवं मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व के विभिन्न प्रकार, प्ररूप या टाइप (Type) निर्धारित करने का प्रयास किया है। अरस्तू ने विश्व के समस्त व्यक्तियों को इन चार प्रकारों में विभक्त किया है—(१) उदास (Melancholic), (२) उत्साही (Sanguine) (३) क्रोधी (Choleric) और (४) आलसी (Phlegmatic)। वस्तुत: यह वर्गीकरण व्यक्ति के चरित्र एवं स्वभाव पर आधारित है। इसी प्रकार भारतीय आचार्यों ने व्यक्ति की मूल प्रकृति एवं प्रवृत्ति के आधार पर व्यक्तित्व के तीन प्रकार माने हैं—(१) सात्विक, (२) राजसी तथा (३) तामसी।

आधुनिक युग में विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने शारीरिक दृष्टि से भी व्यक्तित्व के अनेक प्रकार निर्धारित किए हैं। इनमें क्रैशमर (Kretschmer) का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उनके अनुसार व्यक्तित्व के चार प्रकार हैं—(१) पिकनिक (Pyknic)—छोटा, मोटा, चिकना, आराम प्रिय, सामाजिक आदि, (२) ऐथेलैटिक (Atheletic)—सुडौल, स्वस्थ, क्रियाशील, (३) ऐस्थेनिक (Asthenic)—दुबला-पतला, (४) डिस्प्लैस्टिक (Dysplastic)—मिश्रित गुणवाले।

इसी प्रकार और भी कई मनोवैज्ञानिकों ने शारीरिक दृष्टि से व्यक्तित्व के विभिन्न भेद किये हैं किन्तु हमारे विचार में उनकी चर्चा करना यहाँ निरर्थक है क्योंकि साहित्य के क्षेत्र में एक तो व्यक्तित्व के शारीरिक पक्ष की अपेक्षा उसके मानसिक पक्ष का अधिक महत्त्व होता है और दूसरे पुराने साहित्यकारों का इस दृष्टि से अध्ययन सम्भव नहीं, क्योंकि उनकी शारीरिक विशेषताओं की जानकारी प्राप्त नहीं है।

साहित्य के क्षेत्र में सर्वाधिक महत्त्व प्रसिद्ध मनोविश्लेषक युग के वर्गीकरण का है। उन्होंने सर्वप्रथम व्यक्तित्व के दो भेद किये हैं-(१)अन्तर्मुखी (Introvert), (२) बहिर्मुखी (Extrovert)। अन्तर्मुखी व्यक्तियों में मानसिक शक्ति उन्हीं के विचारों और अनुभूतियों की ओर उन्मुख रहती है। वे सामाजिक परिवेश से खिंचे रहते हैं। वे मुख्यतः अपने ही से सम्पर्क रखते हैं तथा उनमें विचारों का प्राधान्य रहता है। वे आदर्शों एवं भविष्य के बारे में अधिक सोचते हैं। वे सामाजिक कार्यों में भाग नहीं लेते। इसके विपरीत बहिर्मुखी व्यक्तियों में मानसिक शक्ति सामाजिक परिवेश की ओर उन्मुख रहती है। उनकी रुचि अपने विचारों और भावों की अपेक्षा अन्य लोगों में अधिक रहती है। वे व्यावहारिक और काम करने वाले होते हैं तथा वर्तमान में अधिक रहते हैं। युग का मत है कि जो व्यक्ति अपने जाग्रत जीवन में बहिर्मुखी होते हैं, वे अपने अचेतन में अन्तर्मुखी होते हैं और इसी प्रकार जो जाग्रत जीवन में अन्तर्मुखी होते हैं, वे अचेतन में बहिर्मुखी। उनका अचेतन व्यक्तित्व उनके चेतन व्यक्तित्व का पूरक होता है।[1]

युंग ने अन्तर्मुखी और बहिर्मुखी के बीच की कोटि को उभयमुखी व्यक्तित्व की संज्ञा दी है। उभयमुखी व्यक्तियों की रुचि न प्रधानत. अपने में होती है और न प्रधानत. समाज में। वे दोनों में लगभग एक-जैसी रुचि रखते हैं।

मन की चार शक्तियाँ होती हैं—(१) विचार (Thinking), (२) भाव (Emotion), (३) अन्तर्दर्शन (Intution) और (४) संवेदन (Sensation)। इन्हीं चारों में से किसी एक की प्रमुखता के आधार पर अन्तर्मुखी और बहिर्मुखी व्यक्तित्व के भी चार-चार उपभेद माने गए हैं, जो संक्षेप मे इस प्रकार प्रस्तुत किये जा सकते हैं—

(१) अन्तर्मुखी विचारक—अन्तर्मुखी विचारक वर्णनात्मक होते हैं एवं विचार जगत में अभिरुचि रखते है। विचारक होने के कारण उनमे भावावेश की कमी होती है तथा मानवता एवं सहिष्णुता का अभाव होता है।

(२) अन्तर्मुखी भावुक—ऐसे व्यक्ति व्यक्तिवादी अर्थात् असामाजिक होते हैं। अपने भावो की अभिव्यक्ति करने में वे कठिनाई का अनुभव करते हैं। उनमें प्रेम और घृणा के भाव प्रबल होते हैं परन्तु अभिव्यक्ति के अभाव मे उनको कठिनाई का सामना करना पड़ता है। अधिकतर स्त्रियाँ इसी वर्ग की होती है।

(३) अन्तर्मुखी अन्तर्दर्शक—ये प्रायः रहस्यवादी एवं भावुक होते है। साधारण सी बात के भी वे आन्तरिक अर्थ को खोज निकालने की चेष्टा करते हैं।

(४) अन्तर्मुखी संवेदक—इस वर्ग मे वे व्यक्ति आते हैं जो एकान्त आनन्दोपभोगी एवं ससार की हर वस्तु को अपने ही दृष्टिकोण से देखने के आदी होते हैं। वे मुख्यत. काव्य, संगीत, मदिरा तथा ऐन्द्रिय सुखोपभोग के इच्छुक होते हैं।

१. मनोविज्ञान ; यदुनाथ सिन्हा, पृ० ३४०।

(५) बहिर्मुखी विचारक—इस श्रेणी के अन्तर्गत वे व्यक्ति आते हैं जो दुनिया की वस्तुओं एवं मनुष्यों में रुचि लेते हैं। वे मुख्यतः व्याख्यात्मक अथवा समालोचनात्मक होते हैं तथा ठोस, वास्तविक घटनाओं के आधार पर सिद्धान्तों की स्थापना करते हैं। विचारों का प्राधान्य होने के कारण भावुकता की कमी होती है परन्तु इसी कमी पर वे गर्व महसूस करते हैं। साथ ही अपने विचारों को दूसरों पर लादने की प्रवृत्ति भी उनमें प्रायः देखी गई है।

(६) बहिर्मुखी भावुक—इस वर्ग के अन्तर्गत वे व्यक्ति आते हैं जो परंपरापालक, सामाजिक तथा दूसरों में अत्यधिक रुचि लेने वाले होते हैं। प्रायः ऐसे व्यक्तियों में कल्पना की प्रधानता होती है।

(७) बहिर्मुखी अन्तर्दर्शक—ऐसे व्यक्ति वाक्पटु एवं संसारी होते हैं। अपनी मान्यताओं पर प्रायः वे दृढ़ रहते हैं।

(८) बहिर्मुखी संवेदक—ये प्रायः इन्द्रिय परायण, मन्दबुद्धि एवं ऐश्वर्य लोलुप होते हैं। इन्हें प्रभुत्व जमाना अच्छा लगता है चाहे कारण कोई हो।

२. बिहारी के व्यक्तित्व का प्रकार

बिहारी के व्यक्तित्व का प्रकार निर्धारित करते हुए सर्वप्रथम हमें यह देखना होगा कि बिहारी अन्तर्मुखी व्यक्ति थे या बहिर्मुखी? साहित्यकार एवं कलाकार प्रायः अन्तर्मुखी होते हैं किन्तु बिहारी के सम्बन्ध में ऐसा नहीं कहा जा सकता। उनकी सतसई किसी एकांत काव्य-साधना का परिणाम नहीं है अपितु ऐसा प्रतीत होता है कि वे राजदरबार में रहते हुए जो कुछ देखते थे, अनुभव करते थे, उसे ही कलात्मक रूप में अभिव्यक्त कर देते थे। वे साहित्यकार थे पर राजनैतिक एवं सामाजिक जीवन से उदासीन नहीं थे। प्रसिद्ध है कि बिहारी के आश्रयदाता राजा जयसिंह जब अपनी नव-विवाहिता पत्नी के मोह पाश में बंधकर राज-कार्यों से विरक्त हो गए तो बिहारी से नहीं रहा गया और उन्होंने एक दोहे[२] में जयसिंह को इस स्थिति से चैतन्य कराया था।

इसी प्रकार बिहारी को यह अच्छा नहीं लगता था कि मिर्जा राजा जयसिंह शाहजहाँ की ओर से हिन्दुओं के विरुद्ध युद्ध करें, अतः वे उन्हें समझाने के लिए जयसिंह को बाज एवं हिन्दुओं को पक्षियों की उपमा देते हुए कहते हैं—हे बाज तू दूसरों के हाथ में पड़कर पक्षियों को (स्वजनों को) मत मार। हे विहंग! विचार कर देख, इससे तेरा कोई स्वार्थ सिद्ध नहीं होता। यह तो व्यर्थ का श्रम है।[३]

---

२. नहिं परागु, नहिं मधुर मधु, नहिं विकासु इहिं काल।
अली, कली ही सौं बंध्यौ, आगैं कौन हवाल॥
—बिहारी रत्नाकर, दो० सं० ३८।

३. स्वारथु, सुकृतु न, श्रमु वृथा, देखि, विहंग, बिचारि।
बाज, परायैं पानि परि तूँ पच्छीनु न मारि॥
—वही, दो० सं० ३००।

इन उदाहरणो से स्पष्ट है कि बिहारी ऐसे व्यक्ति नही थे जो केवल अपने मे रुचि रखते हो अपितु वे राज-कार्यों मे भी रुचि लेते थे। उनके काव्य मे विभिन्न प्रकार के आमोद-प्रमोद के साधनो, विभिन्न ऋतुओं एवं त्यौहारों (विशेषत. होली) का सहज स्वभाविक चित्रण मिलता है जो इस बात के द्योतक हैं कि बिहारी सामाजिक कार्यों मे भी रुचि लेते थे। वस्तु या नाम परिगणना की वृत्ति प्राय' बहिर्मुखता का लक्षण मानी जाती है। कही-कही बिहारी एक ही दोहे मे अनेक पुष्पो के नाम गिना देते हैं।[४] इसे उनके बहिर्मुखी व्यक्तित्व का लक्षण माना जा सकता है। कदाचित् अपने बहिर्मुखी व्यक्तित्व के कारण ही वे अधिक परिमाण और सख्या मे काव्य-रचना नही कर पाये। अपने व्यस्त सामाजिक जीवन मे से समय निकालकर वे कभी-कभी जैसे-तैसे एक-आधा दोहा बना पाते थे। अत हमारे विचार से इसमे कोई सन्देह नही कि बिहारी का व्यक्तित्व बहिर्मुखी था, किन्तु अब देखना यह है कि बहिर्मुखी व्यक्तित्व के चार उपभेदो मे से वे किस वर्ग के अन्तर्गत आते है।

बिहारी का बौद्धिक पक्ष अत्यधिक विकसित था, वे कुशाग्र बुद्धि के धनी थे, अत बिहारी निश्चय ही बहिर्मुखी सवेदक की श्रेणी मे नही रखे जा सकते क्योकि बहिर्मुखी सवेदक प्राय मन्द बुद्धि के होते हैं। बहिर्मुखी अन्तर्दर्शक-वाक्पटु एव ससारी होते है तथा अपने हठ अथवा मान्यता से समझाने पर भी पीछे नही हटते, लेकिन बिहारी तर्क प्रिय व्यक्ति थे, वे अपनी मान्यताओ को हठ से नही अपितु तर्क से प्रतिपादित करते थे। बिहारी के भक्ति सम्बन्धी दोहे भी इस बात के द्योतक हैं कि बिहारी मात्र ससारी नही थे। अत' बिहारी निश्चय ही बहिर्मुखी अन्तदर्शक नही कहे जा सकते। बिहारी की तर्क शक्ति अत्यधिक विकसित थी, अत कुछ व्यक्ति उन्हे बहिर्मुखी विचारक की श्रेणी मे रख सकते है। किन्तु हम देखते हैं कि बिहारी ने अपनी सतसई में किसी ठोस सिद्धान्त का प्रतिपादन नही किया अपितु उनकी सतसई मे विभिन्न भावों की सरस अभिव्यक्ति हुई है। कवि प्रकृति से भावुक होते हैं अत. हम बिहारी को बहिर्मुखी भावुक की श्रेणी मे रख सकते हैं। हम पीछे तृतीय अध्याय मे बिहारी के बौद्धिक पक्ष का विवेचन करते हुए यह देख चुके है कि बिहारी की कल्पना-शक्ति असामान्य रूप से विकसित थी अत इसमे कोई सन्देह शेष नहीं रह जाता कि बिहारी का व्यक्तित्व बहिर्मुखी भावुक प्रकार का था। कदाचित्, भावुक कहने से भी यह भ्रान्ति उत्पन्न हो सकती है कि उनमे तर्क की अपेक्षा भावना की प्रधानता थी किन्तु हमारे विचार से बिहारी मे तर्क और भावना का उचित

---

४ कत लपटइयतु मो गरै, सो न, जुही निसि सैन।
जिहिं चपक-बरनी किए गुल्लाला-रग नैन॥
—बिहारी-रत्नाकर, दो० सं० ४६६।

समन्वय हुआ है जबकि कल्पना की अपेक्षाकृत अधिकता है। अत. हम इस भ्रांति से बचने के लिए युंग की शब्दावली में किंचित परिवर्तन करते हुए कह सकते हैं कि बिहारी का व्यक्तित्व बहिर्मुखी कल्पनाशील था। यही कारण है कि उनके काव्य मे जहा कल्पना शक्ति का सन्तुलित प्रयोग हुआ है उन्हें गहरी सफलता मिलती है जैसा कि नायिकाओं के रूप-सौन्दर्य एवं उनकी भाव-भंगिमाओं के चित्रण के क्षेत्र मे देखा जा सकता है, किन्तु दूसरी ओर जहाँ उनकी कल्पना शक्ति विचार और अनुभूति से मुक्त होकर आगे बढ़ी है वहा वह असफल सिद्ध हुई है।

३. बिहारी का व्यक्तित्व: संगठित या विघटित ?

आधुनिक मनोविज्ञान के अनुसार व्यक्ति की सफलता इस बात मे मानी जाती है कि उसका व्यक्तित्व संगठित है या विघटित, अत. इस दृष्टि से बिहारी के व्यक्तित्व पर विचार किया जा सकता है। किन्तु इससे पूर्व हमें यह देख लेना चाहिए कि व्यक्तित्व के सगठन एव विघटन से अभिप्राय क्या है ? विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व के संगठन (Integration of Personality) पर विचार करते हुए उसके विभिन्न लक्षणों पर प्रकाश डाला है। मैक्डूगल के अनुसार सगठित व्यक्तित्व उसे कहते है जिसमे बुद्धि और चरित्र का सगठन है। वुडवर्थ ने व्यक्तित्व के संगठन की परिभाषा करते हुए लिखा है—"एक सगठित व्यक्तित्व वह है जिसमें उसके विभिन्न लक्षण, रुचियाँ, इच्छाए, परस्पर सुसमन्वित और सुगठित रूप मे परिणत होकर एकाकार हो गई हो। इसके विपरीत जब व्यक्ति के विभिन्न गुणो, लक्षणों, इच्छाओं और भावनाओ मे एकरूपता, व्यवस्था एव संतुलन का अभाव हो तो उसे विघटन की सज्ञा दी जाती है। वस्तुतः जब व्यक्ति की विभिन्न प्रवृत्तियां परस्पर सुसम्बद्ध एव सुगठित होकर एक दिशा की ओर उन्मुख हो तो इसे सुगठित व्यक्तित्व कहा जाता है जबकि किसी व्यक्ति की विभिन्न वृत्तिया और प्रवृत्तियां परस्पर विरोधी दिशा मे संलग्न हो तो यह उसके विघटन का परिचायक है।

विघटित व्यक्ति प्राय: असामान्य, असामाजिक एवं अव्यावहारिक होकर जीवन मे असफल सिद्ध होता है। आधुनिक मनोविज्ञान के अनुसार व्यक्तित्व का विघटन एक प्रकार की मानसिक विकृति है।

उपर्युक्त लक्षणों को ध्यान में रखकर विचार किया जाये तो कहा जा सकता है कि बिहारी का व्यक्तित्व प्रारम्भ में बहुमुखी होते हुए भी एकोन्मुख दिखाई पड़ता है। वे धर्म, दर्शन, ज्योतिष, कामशास्त्र, वैद्यक, गणित, आदि विभिन्न विषयो में अपनी रुचि एवं प्रवृत्ति प्रदर्शित करते हैं किन्तु इन सबका समन्वय शृंगार के अन्तर्गत कर देते हैं। दूसरे शब्दों में वे नारी के यौन अगो के माध्यम

से ही सभी अंगो का प्रतिपादन कर डालते हैं। अतः कहा जा सकता है कि शृंगार की प्रवृत्ति ही उनके जीवन की प्रमुख प्रवृत्ति थी जिसमें उनकी सभी अन्य प्रवृत्तियो का समन्वय हो गया था। इस तथ्य को बिहारी स्वयं भी निस्संकोच स्वीकार करते हैं। वे तन्त्री नाद, कवित्त रस और रति रस को ही जीवन का परम लक्ष्य घोषित करते हुए भोग विलास को ही अपने जीवन की मुख्य प्रवृत्ति स्वीकार कर लेते हैं।

किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि बिहारी के जीवन के उत्तरार्द्ध मे उनके व्यक्तित्व का यह सतुलन एवं संगठन एकाएक नष्ट हो गया। इसका कारण कदाचित् उनकी सुशिक्षिता पत्नी का असामयिक निधन था। जैसा कि हम अन्यत्र स्पष्ट कर चुके हैं, बिहारी की पत्नी न केवल सुशिक्षित थी अपितु काव्य-रचना भी करती थी। बिहारी के अनेक दोहो से उनके सुखी दाम्पत्य जीवन का भी परिचय मिलता है, किन्तु पत्नी के निधन के कारण उनको गहरा आघात लगा।[५] जिसके फलस्वरूप वे शृगार से वैराग्य और भक्ति की ओर अग्रसर हुए। जहाँ वे इससे पहले नारी के नख-शिख मे ही धर्म और दर्शन के सभी तत्त्वो का साक्षात्कार करते थे वहाँ वे अब तिय छवि छाया मात्र से दूर भागने लगे। उनके जीवन की दिशा काम के स्थान पर राम हो गई।

इस प्रकार हम देखते हैं कि बिहारी के जीवन मे उत्तरार्द्ध मे उनके जीवन मे नया मोड आया जिसका प्रभाव उनके व्यक्तित्व एव कृतित्व पर पडना स्वाभाविक था, किन्तु ऐसा नही कहा जा सकता कि इससे उनका व्यक्तित्व विघटित हो गया, अपितु यही कहा जा सकता है कि उन्होने नयी परिस्थितियो के अनुरूप अपने व्यक्तित्व और जीवन को एक नई दिशा दे दी। वे जिस स्वाभाविकता से शृगारिकता की ओर उन्मुख थे उसी स्वाभाविकता से भक्ति भाव की ओर उन्मुख हो गये। बदली हुई परिस्थितियो के अनुसार अपने को बदल लेना बिहारी के बहिर्मुखी व्यक्तित्व की सफलता का प्रमाण माना जा सकता है। आधुनिक मनोविश्लेषण के अनुसार यह भी कहा जा सकता है कि बिहारी का व्यक्तित्व और जीवन, कुण्ठा एव ग्रन्थि से मुक्त रहा। प्रारम्भ मे उन्होंने काम, सौन्दर्य और प्रेम का उपभोग बिना किसी कुठा के किया और आगे चलकर अपनी प्रवृत्तियो का उदात्तीकरण करते हुए भक्ति और वैराग्य को स्वीकार कर लिया। अत. हमारे विचार में बिहारी का व्यक्तित्व सुसगठित, सतुलित एव सफल था।

---

५. एक बयस, एकै बिरछ, एकै भोग बिलास।
सोन चिरैया उडि गई, (अब) गही राम-कर आस ॥
सुचि सिंगार मैं बूडि कै भयौ बिहारी-दास।
जग तै फिरत उदास अब सुकबि बिहारी-दास ॥
—बिहारी-रत्नाकर, प्राक्कथन, पृ० ६।

"काव्य में बुद्धि हृदय से अनुशासित रहकर ही सक्रियता पाती है, इसी से उसका दर्शन न बौद्धिक तर्क-प्रणाली है और न सूक्ष्म विन्दु तक पहुँचाने वाली विशेष विचार-पद्धति। वह तो जीवन को, चेतना और अनुभूति के समस्त वैभव के साथ स्वीकार करता है। अतः कवि का दर्शन, जीवन के प्रति उसकी आस्था का दूसरा नाम है।"

—महादेवी

जीवन दर्शन

जीवन-दर्शन

* जीवन-दर्शन : सामान्य विवेचन
* बिहारी का जीवन-दर्शन
* उपसंहार

७ | जीवन-दर्शन : सामान्य विवेचन

१. जीवन-दर्शन : परिभाषा

'जीवन-दर्शन' शब्द 'जीवन' और 'दर्शन' के योग से बना है। 'दर्शन' शब्द की निष्पत्ति 'दृश' धातु से करण अर्थ में 'ल्युट्' प्रत्यय लगाकर हुई है, इसका अर्थ होता है 'जिसके द्वारा देखा जाय'।[1] अतः सामान्य व्यवहार में दर्शन शब्द का अर्थ 'देखना' होता है, किन्तु दर्शन शास्त्र में यह एक विशिष्ट अर्थ के लिए प्रयुक्त होता है तथा विभिन्न विद्वानों ने इसकी विभिन्न परिभाषाएं दी हैं। प्रसिद्ध दार्शनिक डा० भगवान दास का कहना है—'संसार के मर्म का, जीवन मरण के रहस्य का, सुख-दुःख के हृदय का, अपने स्वरूप का, पुरुष और पुरुष की प्रकृति का, जिस ज्ञान से दर्शन हो जाय वह दर्शन है। सब शास्त्रों के सार को, तत्त्व को, पहचानने की शक्ति हो जाय, सब में एक ही अर्थ, एक ही परमात्मा की विविध विचित्र अनन्त कला दिखाई पड़ने लगे, समदर्शिता हो जाय, सब असख्य मतों, धर्मों, रुचियों का विरोध, परिहार और सच्चा परस्पर समन्वय हो जाय, सब बातों के भीतर एक ही बात दिखाई पड़े, वह सच्चा दर्शन है।'[2] डा० राधाकृष्णन का भी कहना है—'दर्शन एक ऐसा आध्यात्मिक ज्ञान है, जो आत्मा रूपी इन्द्रिय के समक्ष सम्पूर्ण रूप में प्रकट होता है।'[3]

अंग्रेजी भाषा में दर्शन 'फिलासफी' (Philosophy) शब्द के पर्याय के रूप में ग्रहण किया जाता है। 'फिलासफी' शब्द ग्रीक के दो शब्दों के योग से बना है जिनका अर्थ है—प्रेम (Love) और बुद्धिमत्ता (Wisdom)। अतः फिलासफी

---

१ पु० भारतीय दर्शन ; ले० वाचस्पति गैरोला, पृ० ९।
२. दर्शन का प्रयोजन ; डा० भगवान दास, पृ० २०।
३. भारतीय दर्शन ; डा० राधा कृष्णन, पृ० ३८।

शब्द का मूल अर्थ था 'ज्ञान के प्रति प्रेम' या 'सत्य के प्रति प्रेम'।[4] विभिन्न पाश्चात्य दार्शनिकों ने 'फिलासफी' शब्द की विभिन्न परिभाषाएं की हैं। कान्ट के अनुसार मानवता की सर्वोच्च अभीप्साएं तथा अत्यन्त उग्र इच्छाएं एवं उस खोज में आने वाली समस्याएं और उनका समाधान ही फिलासफी है।[5] एमर्सन ने मनुष्य के सृष्टि की रचना सम्बन्धी प्रश्नों एवं उनके समाधानों को फिलासफी माना है।[6] जान लाक का भी मत है कि फिलासफी और कुछ नहीं वरन् चीजों के बारे में सत्य ज्ञान है।[7]

इस प्रकार विभिन्न विद्वानों द्वारा 'दर्शन' शब्द की जो विभिन्न परिभाषाएं प्रस्तुत की गई हैं उनके आधार पर हम निष्कर्ष रूप में यह मानते हैं कि मनुष्य की सब चीजों को जानने और समझने की प्रबल इच्छा की अभिव्यक्ति ही दर्शन है। किन्तु यही दर्शन शब्द 'जीवन' शब्द के साथ जुड़कर सामान्यतः दर्शन के प्रचलित अर्थ से भिन्न अर्थ में प्रयुक्त होने लगा है। अतः 'जीवन दर्शन' शब्द की परिभाषा करने के लिए 'जीवन' शब्द का स्पष्टीकरण करना भी अनिवार्य हो जाता है।

सामान्यतः 'जीवन' शब्द का अभिप्राय होता है 'जो मृत न हो' अथवा 'जो जड़ न हो' अर्थात् हम यह कहते हैं कि जो जीवित या चेतन है वही जीवन है। इस प्रकार यदि हम वैज्ञानिक दृष्टि से देखें तो मानव से लेकर पशु-पक्षी में ही नहीं अपितु जैसा कि जगदीश चन्द्र बसु ने सिद्ध किया है, जड़ समझे जाने वाले पेड़-पौधों आदि में भी चेतना है, किन्तु व्यावहारिक रूप में 'जीवन' से तात्पर्य मानव जीवन से ही होता है। मानव में बुद्धि जैसे श्रेष्ठ तत्त्व की प्रधानता होने के कारण वह संसार के शेष चेतन जगत् से भिन्न एवं उच्च है तथा उसका निरन्तर यही प्रयास रहता है कि वह अतीत के अनुभवों, वर्तमान के ज्ञान एवं भविष्य की संभावनाओं के बल पर बुद्धि की उच्चतम सीमा को प्राप्त करले। मानव हृदय में संचित अनुभूतियां, उसके मस्तिष्क कोषों द्वारा ग्रहीत

---

4. The ... words meaning 'Lov ... riginally meant 'Lov ...
   —Introduc ... Max Rosenberg

5. "The question and ... express the highest aspirations and most ardent desires of humanity". —Ibid, p. 10.
6. "Emerson held that 'philosophy is the account, which the mind gives to itself, of the constitution of the World". —Ibid. p. 10.
7. 'John Locke, even more simply, defined philosophy as nothing but the true knowledge of things." —Ibid. p. 10.

उसका ज्ञान और भविष्य की संभावनाएं, मानव को न केवल कार्य करने की प्रेरणा देती हैं, अपितु प्रत्येक वस्तु के प्रति उसका अपना एक निजी दृष्टिकोण भी निर्मित कर देती हैं। इसी दृष्टिकोण को 'जीवन-दर्शन' नाम से अभिहित किया जाता है।

कुछ विद्वानों का मत है कि कतिपय विचारशील व्यक्तियों का ही जीवन-दर्शन होता है, सामान्य जन का नहीं। किन्तु हमारे विचार में यह मत नितान्त भ्रान्तिपूर्ण एवं आधारहीन है। 'प्रत्येक व्यक्ति का एक जीवन दर्शन होता है। किसी भी कार्य को हम क्यों करते हैं, अथवा किसी कार्य विशेष को करने से हम अपने को रोकते हैं, यह सब हमारे जीवन-दर्शन पर आधारित है। किसी मानव के क्रियाकलाप, उसका दृष्टिकोण, झुकाव, उसके विचार, उसकी धारणाएं, एवं उसके नैतिक मानदण्ड का योग फल ही उसका अस्तित्व है, और यही उसका जीवन-दर्शन होता है।[8] अतः निस्सन्देह मात्र जीवित रहने के लिए ही प्रत्येक व्यक्ति का एक निजी जीवन दर्शन होना आवश्यक है।[9] हां, यह हो सकता है कि स्वयं व्यक्ति को यह ज्ञान न हो कि उसका जीवन-दर्शन क्या है किन्तु यह निश्चित है कि उसके चेतन व अवचेतन मन में उसका जीवन-दर्शन अवश्य अवस्थित रहता है जो कभी प्रत्यक्ष और कभी अप्रत्यक्ष रूप में व्यक्ति की विचारधारा एवं कार्य-प्रणाली को प्रभावित करता रहता है।

किसी व्यक्ति का मूल्यांकन सही रूप में तभी हो सकता है जबकि हम उसके निजी जीवन-दर्शन का परिचय प्राप्त कर लें, क्योंकि 'एक व्यक्ति के जीवन-दर्शन के जाने बिना, वह सब के लिए लगभग अनभिज्ञ एवं रहस्यपूर्ण हो जाता है। व्यक्ति का जीवन-दर्शन ही उसकी विचारधाराओं तथा व्यवहार के ताले की कुंजी है।[10] इसका तात्पर्य यह हुआ कि जीवन-दर्शन पर ही किसी का आचरण एवं उसके विचार निर्भर करते हैं। अस्तु, निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि 'विचार धारा या जीवन-दर्शन व्यक्ति के जीवन-चरित्र तथा व्यक्तित्व का नव-

---

8. 'Every man possess a philosophy of life. We act in this way or we act in that way or we may refrain from action —each is a symbol or result of one ... all a man's actions, and conceptions and standar print of existence, his philosophy of life.'
—Introduction to Philosophy, by Max Rosenberg. *p. 3.*
9. "To be alive, to be human, one must possess a philosophy of life."
10. "Without knowine main an unkn phy is the key

नीत है।'[११] इतना ही नहीं, जीवन-दर्शन ही व्यक्ति के जीवन का प्रेरक, संचालक, मार्ग-प्रदर्शक एवं नियन्त्रण-कर्ता है, वह उसकी समस्त चिन्तनाओं एवं गति विधियों का नियन्ता है।

२. जीवन-दर्शन एवं जीवन-दृष्टि

हम पीछे कह चुके हैं कि 'दर्शन' का मूल अर्थ है 'देखना' और 'दृष्टि' उस साधन को कहते हैं जिससे देखा जाता है। अत 'जीवन-दृष्टि' से तात्पर्य हुआ व्यक्ति की जीवन को देखने की शक्ति। इसी 'जीवन दृष्टि' से व्यक्ति के जीवन-दर्शन का निर्माण होता है। सैकडो व्यक्ति नित्य वृद्ध एव बुबड़े व्यक्तियो को, घायल पशु-पक्षियो को देखते हैं किन्तु यह महात्मा बुद्ध की सामान्य जन से भिन्न जीवन-दृष्टि का ही परिणाम था कि इन दृश्यों को देखकर उनका जीवन के प्रति कोई मोह न रहा और कालान्तर मे उनमे एक असामान्य महान् जीवन-दर्शन का निर्माण हुआ। एक सीमा तक हम कह सकते हैं कि जीवन-दर्शन साध्य है तो जीवन-दृष्टि साधन। अतः कहा जा सकता है कि जीवन-दर्शन की अपेक्षा जीवन-दृष्टि का क्षेत्र सीमित, रूप अविकसित एव स्थान गौण है। फिर भी दोनो एक दूसरे के पूरक हैं। जहाँ निराला का प्रगतिवादी जीवन-दर्शन उन्हे एक ऐसी जीवन-दृष्टि प्रदान करता है कि उन्हें लाल गुलाब जैसा सुन्दर फूल मजदूर वर्ग का रक्त चूसकर मोटा हुआ पूँजीपति नजर आता है,[१२] वहा कबीर की जीवन-दृष्टि फूलो के खिलने और मुरझाने से उस जीवन-दर्शन का निर्माण करती है जिसके अनुसार जीवन क्षणभगुर है, राम नाम ही सबसे वडा धन है और भौतिक ऐश्वर्यों का कोई महत्त्व नही। अत हम कह सकते हैं कि जीवन दृष्टि का जीवन-दर्शन के निर्माण मे और जीवन-दर्शन का जीवन-दृष्टि के विकास में पर्याप्त योग रहता है।

३. जीवन-दृष्टि के प्रकार

यद्यपि विभिन्न व्यक्तियो के जीवन-दर्शन मे परस्पर सूक्ष्म अन्तर रहता है

---

११. बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' : व्यक्तित्व एवं काव्य।
—लेखक डा० लक्ष्मीनारायण दुबे, पृ० १२४।

१२ 'अबे, सुन बे, गुलाब,
भूल मत गर पाई खुशबु, रंगो-आब,
खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट
डाल पर इतरा रहा कैपीटलिस्ट।'
—'कुकुरमुत्ता', निराला।

किन्तु फिर भी उन्हें स्थूल रूप से तीन वर्गों में विभक्त किया गया है—(१) आदर्शवादी, (२) स्वच्छन्दतावादी तथा (३) यथार्थवादी।

आदर्शवादी जीवन-दर्शन मूलतः अध्यात्मवादी होता है, जबकि यथार्थवादी में भौतिकवाद की प्रमुखता रहती है। स्वच्छन्दतावादी जीवन दर्शन में इन दोनों के बीच की अर्थात् उसमें अध्यात्म एवं भौतिकता दोनों का समन्वय रहता है। आदर्शवादी परम्परा को महत्त्व देता है तो स्वच्छन्दतावादी नूतनता का प्रेमी होता है। यथार्थवादी वर्तमान की वस्तु स्थिति को ध्यान में रखकर आगे बढ़ता है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से आदर्शवादी में विचार की, स्वच्छन्दतावादी में भावना की तथा यथार्थवादी में क्रिया की प्रमुखता रहती है। आदर्शवादी जहां सत्य का पुजारी होता है वहां स्वच्छन्दतावादी सौन्दर्य को सर्वाधिक महत्त्व प्रदान करता है जबकि यथार्थवादी शिव, हित या हानि-लाभ को प्रमुख मानता है। साहित्य के क्षेत्र में इन तीनों ही दृष्टिकोणों को क्रमशः शास्त्रवादी, स्वच्छन्दतावादी एवं यथार्थवादी दृष्टिकोण की संज्ञा दी जाती है। जीवन-दर्शन के अन्तर के कारण साहित्य की विषयवस्तु एवं शैली सम्बन्धी प्रवृत्तियों में अन्तर आ जाता है। इस अन्तर को डा० गुप्त ने तालिका रूप में इस प्रकार प्रस्तुत किया है[१३]—

क्षेत्र	आदर्शवादी	स्वच्छन्दतावादी	यथार्थवादी
१. मनोवैज्ञानिक दृष्टि से	ज्ञानात्मक	भावनात्मक	क्रियात्मक
२. दार्शनिक दृष्टि से	अध्यात्मवादी	आध्यात्मिक-भौतिक	भौतिकवादी
३. सांस्कृतिक दृष्टि से	तत्त्व परक	आदर्श परक	इन्द्रिय परक
४. साहित्यिक दृष्टि से	बौद्धिक तत्त्व प्रधान	भावात्मक तत्त्व प्रधान	कल्पना प्रधान
५. विषयवस्तु	धार्मिक व दार्शनिक	साहित्यिक एवं शृंगारिक	सामाजिक, ऐन्द्रियक राजनैतिक, लोकोपयोगी
६. पात्र	दिव्य एवं आदर्श	वीर एवं प्रेमी	सामान्य
७ घटनाएं	अलौकिक एवं महान कार्य	युद्ध एवं विवाह	दैनिक जीवन के क्रिया कलाप
८. रस एवं भावात्मक प्रवृत्तियाँ	शान्त भक्ति रहस्यवाद	वीर एवं उच्च-कोटि का शृंगार रस	रसिकता, कामुकता प्रधान शृंगार, वीभत्स
९. कला का प्रयोजन	धर्म या दर्शन की स्थापना	कलात्मक सौन्दर्य की सृष्टि करना	अर्थ-प्राप्ति, आत्म-विज्ञापना

१३. हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, डा० गुप्त, पृ० ५६।

४. साहित्य और जीवन-दर्शन

साहित्य की विषयवस्तु के मूल मे तीन तत्त्व विद्यमान रहते हैं—विचार, भाव और कल्पना। साहित्य-सर्जन मे विचार भाव से मिश्रित होकर एव कल्पना से पल्लवित होकर प्रकट होते हैं। मनोवैज्ञानिको के अनुसार मन मे उठा हुआ विचार कभी समाप्त नही होता अपितु अवचेतन मन मे स्थान ग्रहण कर लेता है तथा वह कुछ समय पश्चात् अनुकूल परिस्थितियाँ पाकर तीव्र अनुभूति के रूप में सहज स्वाभाविक ढग से फूट पडता है। अनुभूति को अभिव्यक्ति तक आने के लिए चार प्रक्रियाओं-मनन, पोषण, स्फुरण तथा विवेक से गुजरना पडता है।[१४] इसी अभिव्यक्ति का रूप साहित्य है।

श्री भट्टतौत का भी कहना है कि प्रत्येक अनुभूति 'प्रज्ञा' अथवा बुद्धितत्त्व का सहारा लेकर अभिव्यक्ति का रूप ग्रहण करती है। अनुभूति और प्रज्ञा मिल कर प्रतिभा को जन्म देते हैं, जिससे कलाकार अपनी काव्य-रचना मे समर्थ होता है। प्रतिभा का होना ही साहित्यकार का गुण है।[१५]

व्यावहारिक जीवन मे भी अनुभूति, भाव, कल्पना और विचार के मिश्रण से धारणाएं बनती हैं, जिन्हे जीवन-दर्शन या वैयक्तिक दृष्टिकोण के नाम से अभिहित किया जाता है। साहित्यकार मे सवेदनशीलता सामान्य जन से अधिक होती है, अत उसके मानस पटल पर अन्तर्बाह्य स्थितियो का प्रभाव अधिक स्थायी एव तीव्रता से पडता है। यही कारण है कि उसका जीवन-दर्शन सामान्य जन की अपेक्षा अधिक स्पष्ट होता है।

कवि व्यक्तित्व के दो रूप माने गए है—द्रष्टा रूप एव स्रष्टा रूप। द्रष्टा से वह सत्य का साक्षात्कार करता है एव जीवन और जगत् के गूढ रहस्यो का उद्घाटन करता है। श्री अरविन्द ने कितने सुन्दर शब्दो मे कहा है—'बुद्धि, कल्पना एव श्रवण शक्ति के द्वारा न तो काव्यानन्द वास्तव मे ग्रहण किया जा सकता है न ही ये इसके सच्चे स्रष्टा हैं। ये तो मात्र माध्यम हैं, काव्यानन्द की वास्तविक स्रष्टा एव ग्राहक तो कवि की आत्मा है।[१६] कवि की आत्मा किसी

---

१४. साधना और सघर्ष, स० रणवीर राग्रा, पृ० ६२।

१५. 'प्रज्ञा नवनवोन्मेष शालिनी प्रतिभामता।
तदनु प्राणानाजीवद्वर्णनापि निपुण. कवि कवे कर्म स्मृतं काव्यम्॥"
—'काव्य कौतुक' . भट्टतौत।

16. For neither the intelligence, the imagination nor the ear are the true recipents of the poetic delight, even as they are not its true creators, they are only its channels and instruments, the true creator, the true hearer is the soul.'
—The Future Poetry : Sri Aurobindo, p. 13.

भी प्रकार का विजन (Vision) देख सकती है। यह विजन स्वयं अपनी अभिव्यक्ति के लिए आकुल रहता है। यही अभिव्यक्ति काव्य का रूप धारण करती है। अतः सत्य के दर्शन के पश्चात् जिस कविता का उदय होता है, वही वास्तविक एवं उच्च कविता है।[१७] निम्नस्तरीय कविता की रचना आत्मानुभूति से न होकर बौद्धिक उत्तेजना, कल्पना एवं संवेगों के सहयोग से होती है।[१८] इसी लिए उत्तम कवि अपने स्रष्टा रूप से ऐसे काव्य का प्रणयन करता है जो उसे एवं अन्य पाठकों को एक दैवी आनन्द से परिपूर्ण कर दे और वही उसके उत्तम होने की पहचान है।[१९]

---

17. "But always, whether in the search or the finding, the whole style and rythm of poetry are the expression and movement which come from us out of a certain spiritual excitement caused by a vision in the soul of which it is eager to deliver itself. The vision may be of any thing in nature or God or man or the life of creatures or the life of things, it may be a vision of force and action or of senssible beauty or of truth of thought, or of emotions of pleasure and pain, or this life or the life beyond this life. It is sufficient that it is the soul which sees and the eye, sense, heart and thought-mind become the passive instrument of the soul. Then we get the real, the high poetry."

'The Future Poetry' by Sri Aurobindo, p. 20.

18. "But if it is too much an excitement of the intellect the imagination, the emotions, the vital activities seeking rythmical and forceful expression which acts, without enough of the greater spiritual excitement embracing them, if all these are not sufficiently sunk into the soul, steeped in it, fused in it and the expression does not come out purified and uplifted by a sort of spiritual transmutation, then we fall to lower levels of poetry, and get work of a much more doubtfull immortality."

—The Future Poetry : Sri Aurbindo, p. 20—21.

19. Therefore, poetry has not really done its work, at least its highest work, until it has raised the pleasure of the instrument and transmuted it in to the deeper delight of the soul. A Divine Ananda a delight interpretative, creative, revealing, formative,.........such spiritual joy is

(शेष अगले पृष्ठ पर)

कवि का दर्शन जितना शाश्वत एव सार्वभौम होगा उतनी ही उसकी कविता पूर्ण एव सार्वकालिक होगी। 'मैं' और 'वह' के क्षुद्र स्वार्थ से ऊपर उठा हुआ कवि का अन्तःकरण उसके जीवन-दर्शन को व्यापकता प्रदान करता है। श्रेष्ठ कवि का काव्य अपने युगबोध एव युग की भाषा मे होता हुआ भी चिरतन होता है, शाश्वत होता है। वह अपने जीवन-दर्शन की व्यापकता के आधार पर, समसामयिक समस्याओ से प्रभावित रहते हुए भी ऐसे महान् विषय की उद्भावना करता है जो एक जाति, एक राष्ट्र, एक समय के लिए ही सत्य न होकर, सभी कालो के लिए सत्य होता है।

कवि के लिए जीवन एव सत्य का दर्शन दो भिन्न वस्तुए नही रहती। जीवन दर्शन की यह शाश्वतता उसकी कविता को सजीव बनाती है। यदि साहित्य मे प्रतिबिम्बित जीवन-दर्शन शक्तिवान नही होता तो साहित्य की सत्ता कुछ रह ही नही जाती। सत्य पर आधारित कवि का जीवन-दर्शन ही उसके साहित्य को प्राणवान एव समाजोपयोगी बनाता है। किसी भी साहित्यकार की रचना का महत्त्व उसमे स्थापित जीवन-दर्शन के महत्त्व के कारण ही होता है। सच तो यह है कि साहित्य मे जीवन-दर्शन का वही स्थान है जो शरीर मे आत्मा का।

साहित्य व्यक्ति विशेष के जीवन-दर्शन को जनता तक पहुँचाने का साधन मात्र है। इसे हम वह दर्पण भी कह सकते हैं जिसमे आने वाली शताब्दियो के लोग अपने पूर्वजों के जीवन का दर्शन करते हैं। भावो की कलात्मक अभिव्यक्ति कोसाहित्य माना जाता है, किन्तु अभिव्यक्ति के मूल मे कवि की अनुभूतियाँ छिपी रहती है। अभिव्यक्ति के आवरण को अनावृत करके ही उसके भीतर छिपी अनुभूति को पाया जा सकता है। शरीर से ही आत्मा तक पहुँचा जा सकता है अतः हम कह सकते हैं कि साहित्य वह माध्यम है जिसके द्वारा युग-विशेष की विचाराधारा, लेखक की प्रेरणा शक्ति, अनुभूतियो एव इसके जीवन-दर्शन को खोजा जा सकता है।

साहित्य के साध्य को लेकर आधुनिक युग मे दो वर्ग हो गये हैं—एक वे जो कला को जीवन के लिए अर्थात् 'Art for life's sake' मानते है तथा दूसरे वे जो कला को कला के लिए अर्थात् 'Art for art's sake' मानते हैं।

(पिछले पृष्ठ का शेष)

that which the soul of the poet feels and which, when he can conquer the human difficulties of his task, he succeeds in pouring also into all those who are prepared to receive it. And this delight is not merely a godlike pastime, it is a great formative and illuminative power.

—The Future Poetry. p. 13-14.

साहित्यकार का जीवन-दर्शन इन दोनों वर्गों में से जिस भी वर्ग के अधिक निकट होगा, उसका साहित्य स्वत. उस रचना से भिन्न होगा, जिसके रचयिता का जीवन-दर्शन दूसरे वर्ग के निकट है।

'कला को जीवन के लिए' मानने वाला साहित्यकार अपनी रचना में नीति सदाचार, उपयोगिता आदि समाजोत्थान में सहायक गुणों पर विशेष जोर देगा। उसके साहित्य में ऐसे तत्त्वों की प्रधानता होगी जो समाज के हित में हैं। अत. निश्चय ही विचारों की प्रधानता एवं गम्भीरता उस साहित्य का सहज स्वाभाविक गुण होगा।

'कला कला के लिए' सिद्धान्त के पक्षधर साहित्यकारों की रचना में आनन्द, भोग एवं सौन्दर्य की प्रवृत्ति प्रचुर मात्रा में मिलेगी क्योंकि उनके लिए निजी सुख समाज से बड़ा है अत वह साहित्यिक परम्पराओं एवं समाजगत रूढ़ियों का बहिष्कार करता हुआ स्वच्छन्दात्मक प्रवृत्ति से पूर्ण होगा।

यदि हम हिन्दी साहित्य के इतिहास पर दृष्टिपात करें तो देखेंगे कि मूल्य बदल जाने से किस प्रकार साहित्य का रूप भी बदल जाता है। जहाँ भक्तिकाल में तुलसी ने अपने काव्य में राम को लोकरक्षक मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में चित्रित किया है वहाँ जीवन के मूल्य बदल जाने के कारण रीतिकालीन कवि केशवदास ने अपनी रामचन्द्रिका में उन्ही राम का शृंगारिक रूप चित्रित कर अपने को धन्य मान लिया। यदि हम आधुनिककाल पर दृष्टि डालें तो वहाँ भी देखेंगे कि प्रेमचन्द्र का साहित्य समाजवाद की पुष्टि करता है, यशपाल के साहित्य पर साम्यवाद की स्पष्ट छाप उभरी है और अज्ञेय प्रत्येक समस्या के पीछे यौन आकर्षण खोजने में लगे हैं। वास्तव में इन सबके मूल में इन साहित्यकारों की जीवन-दृष्टि एवं जीवन-दर्शन की विशिष्टता है। जीवन-दर्शन का स्वरूप साहित्यकार की रचना में अपनी विशिष्ट छाप छोड़ देता है। इसी कारण युग-विशेष में ही नहीं, व्यक्ति-विशेष के साथ ही साहित्य में परिवर्तन दृष्टिगोचर होने लगता है। अस्तु, साहित्यकार के जीवन-दर्शन का उसकी रचना के साथ गहरा सम्बन्ध होता है तथा इसी लिए किसी भी साहित्य को सम्यक् रूप में समझने के लिए उसके रचयिता के जीवन-दर्शन को जान लेना आवश्यक है। ●

८ बिहारी का जीवन-दर्शन

(१) बिहारी के जीवन का चरम लक्ष्य

किसी भी व्यक्ति का जीवन-दर्शन मूलत. इस तथ्य पर आधारित होता है कि वह अपने जीवन का चरम लक्ष्य किसे मानता है जो लोग अध्यात्मवादी होते हैं, वे मरणोत्तर जीवन के अस्तित्व मे विश्वास करते हुए स्वर्ग या मोक्ष को ही अपने जीवन का चरम लक्ष्य मानते है जबकि भौतिकवादी लोग इसी जीवन के भोग विलास को, तथा उसके साधनो को अपने जीवन का चरम लक्ष्य मानते है। यद्यपि बिहारी ने अपने भक्ति सम्बन्धी दोहो मे मोक्ष को भी महत्व दिया है किन्तु वह उनके काव्य की मूल भावना नही है। उनके अधिकाश दोहो मे शृगार रस की प्रमुखता है तथा उनमे भोग विलास को ही महत्त्व प्राप्त है। उन्होने लिखा है—

तन्त्री नाद कवित्त-रस, सरस राग, रति-रंग।
अनबूड़े बूड़े तरे जे बूड़े सब अंग॥[1]

उपर्युक्त दोहे मे तन्त्री नाद से लेकर रति रग तक जिन तत्त्वो की चर्चा की गई है, वे सभी विलासिता के ही विभिन्न रूपो एव साधनो का प्रतिनिधित्व करते हैं, अत यह कहा जा सकता है कि उनके विचारानुसार जीवन की सफलता कला, सौन्दर्य और प्रेम का आनन्द लूटने मे ही है, जो व्यक्ति ऐसा नही करते उनका जीवन व्यर्थ है।

---

१. बिहारी रत्नाकर, दो० स० ६४।

बिहारी लौकिक जीवन की अनुभूतियों को कम महत्त्वपूर्ण नहीं मानते। विशेषत प्रणयानुभूतियों को तो जीवन की सर्वोत्तम निधि मानते हैं इसीलिए वे प्रिय मिलन को इतना अधिक महत्त्वपूर्ण मानते है कि उसके समक्ष स्वर्ग को भी ठुकरा देते हैं—

जौ न जुगति पिय मिलन की, धूरि मुकति मुंह दीन।
जौ लहियै संग सजन, तौ धरक नरक हूं की न ॥[2]

यहा कवि ने *प्रिय-सगम को स्वर्ग और मुक्ति से भी बढ़कर माना है।*

जीवन का सबसे बडा सुख क्या है? यदि इसका उत्तर बिहारी से पूछा जाये तो वे कहेगे कि प्रिय का सान्निध्य ही सबसे बडा सुख है। यदि प्रिय और प्रेयसी साथ-साथ हो तो न धन-दौलत की आवश्यकता है और न ही किसी अन्य वस्तु की। जीवन के इस आदर्श की अभिव्यक्ति उन्होंने एक कपोत्-युगल के माध्यम से करते हुए लिखा है—

पटु पांखै, भखु कांकरै, सपर परेई संग।
सुखी, परेवा, पुहुमि मैं, एकै तुंही विहंग ॥[3]

उपर्युक्त दोहे मे प्रतिपादित किया गया है कि यद्यपि कबूतर के पास वस्त्रो के नाम पर केवल पख एवं भोजन के नाम पर ककड़ हैं किन्तु सुन्दर परो वाली कबूतरी उसके सदा साथ है इसलिए धरती पर उसके जैसा सुखी कोई नही है। अस्तु, कहा जा सकता है कि प्रेममय जीवन ही बिहारी का चरम आदर्श है। वे प्रिया के सानिध्य को ही जीवन का सबसे बडा सुख मानते हैं उसके समक्ष न तो वे स्वर्ग और मोक्ष को और न ही धन-दौलत को महत्त्व देते हैं। कदाचित्, इसके पीछे कवि के व्यक्तिगत जीवन की परिस्थितियों का योग भी स्वीकार किया जा सकता है। ऐसा प्रतीत होता है कि बिहारी का दाम्पत्य जीवन बहुत सुखमय था। अनुश्रुतियों से यह भी ज्ञात होता है कि उनकी पत्नी सुशिक्षिता *और काव्य-मर्मज्ञा थीं। यह भी कहा जाता है कि वे स्वयं भी कविता लिखती* थीं जिसके कारण कुछ लोगो ने यह भी प्रवाद चला दिया कि बिहारी की सतसई उनकी पत्नी के द्वारा लिखी हुई है। रत्नाकर जी को 'बिहारी-सतसई' की एक पुरानी प्रति मिली थी जिस पर निम्नांकित दो दोहे अंकित हैं—

---

२. बिहारी-रत्नाकर, दो० सं० ७५।
३. वही, दो० स० ६१६।

एक मयरा, एक बिरछ, एक भोग विलास।
सोन चिरैया उड़ि गई, गह्यो राम-पद आस॥
सुचि सिंगार में बूड़ि कै भयो बिहारी-दास।
जगतै फिरत उदास अब सुकवि बिहारी-दास॥[४]

इन दोहों से ज्ञात होता है कि अपनी पत्नी के देहान्त के पश्चात् बिहारी को गहरा वैराग्य हो गया था।

अस्तु, इस आधारपर कहा जा सकता है कि बिहारी ने अपने सुखी दाम्पत्य जीवन के कारण प्रेममय जीवन को ही जीवन का सबसे बड़ा लक्ष्य और प्रिया के सान्निध्य को ही सबसे बड़ा सुख माना था किन्तु प्रिया के असामयिक देहान्त के कारण उनके जीवन-दर्शन को गहरा आघात लगा जिससे उनकी जीवन-दृष्टि प्रवृत्ति के स्थान पर निवृत्ति की ओर उन्मुख हो गई। कदाचित् इसीलिए परवर्ती दोहों मे स्वर्ग और मोक्ष की कामना मुखर है किन्तु जैसा कि पीछे कहा जा चुका है कि इसका सम्बन्ध उनके जीवन की मूल एव स्थायी प्रवृत्ति से न होकर परिस्थिति-विशेष से उत्पन्न गौण प्रवृत्ति से है। वृद्धावस्था मे पहुँचकर तो अनेक शृगारी कवि— विद्यापति, केशव, देव, पद्माकर आदि—भक्ति, निर्वेद और मोक्ष की ओर झुक गये हैं किन्तु इसे इनके जीवन की प्रमुख एव प्रतिनिधि प्रवृत्ति के रूप मे स्वीकार नही किया जा सकता। अत यही कहना उचित होगा कि सामान्यत: बिहारी जीवन की सार्थकता सौन्दर्य, प्रेम एव विलास के आस्वादन में ही मानते थे।

(२) अध्यात्म, दर्शन एवं धर्म के प्रति दृष्टिकोण

बिहारी का आविर्भाव जिस युग एव परिवार मे हुआ था, उसे देखते हुए यह स्वाभाविक था कि अध्यात्म, दर्शन एव धर्म के प्रति उनका दृष्टिकोण आस्थावादी होता। उनका ईश्वर की सत्ता पर पूर्ण विश्वास था। इसीलिए उन्होंने उसे जीवन की सबसे बडी सम्पत्ति या शक्ति के रूप मे स्वीकार करते हुए लिखा है—"चाहे कोई करोडो का सग्रह करे या कोई लाखों-हजारों का। मेरी सम्पत्ति तो एक मात्र यदुपति ही है जो कि सारी विपत्तियों का निराकरण करने वाले हैं।[५]

---

४. बिहारी रत्नाकर, भूमिका, पृ० ६।

५. कोउ कोरिक सग्रहौ, कोऊ लाख हजार।
मो सपति जदुपति सदा बिपति-बिदारनहार॥
—बिहारी रत्नाकर, दो० ६१।

भारतीय दर्शन-शास्त्रो में ईश्वर के दो रूपो—निर्गुण एवं सगुण का प्रतिपादन हुआ है। यद्यपि बिहारी व्यक्तिगत रूप मे सगुण रूप के ही उपासक थे किन्तु निर्गुण रूप को भी वे अमान्य नही मानते थे। इसीलिए उन्होने राधा-कृष्ण की युगल छवि का अकन करते हुए भी निर्गुण का प्रतिपादन किया है—

दूरि भजत प्रभु पीठि दै गुन-विस्तारन-काल।
प्रगटत निर्गुन निकट रहि, चंग-रंग भूपाल ॥[६]

बिहारी किस सम्प्रदाय के अनुयायी थे—इस प्रश्न पर विचार करते हुए कुछ आलोचको ने उन्हें निम्बार्क मतानुयायी बताया है क्योकि उन्होंने अपने काव्य में राधा-कृष्ण के प्रति भक्ति-भाव प्रदर्शित किया है तथा निम्बार्क सम्प्रदाय मे भी राधा-कृष्ण की उपासना का प्रचलन है। दूसरी ओर बिहारी के जीवन-चरित पर विचार करने वाले विद्वानो ने स्वामी नरहरिदास को इनका दीक्षा-गुरू माना है। स्वामी नरहरिदास जी स्वय हरिदासी सम्प्रदाय के थे, अत. बिहारी हरिदासी संप्रदाय मे दीक्षित माने जा सकते हैं।[७]

बिहारी की दीक्षा चाहे जिस सम्प्रदाय मे हुई हो किन्तु उनमे साम्प्रदायिक कट्टरता का सर्वथा अभाव था। उन्होने द्वैतवादी भक्ति मार्ग को ग्रहण करते हुए भी अद्वैतमत का प्रतिपादन करते हुए लिखा है—

मैं समुझयो निरधार, यह जगु कांचो कांच सो।
एकै रूप अपार प्रतिबिंबित लखियतु जहां ॥[८]

यहां कवि ने ब्रह्म की एकता एवं जगत् के मिथ्यापन का प्रतिपादन अद्वैतवाद के अनुसार किया है। साथ ही उन्होने एक दोहे मे विभिन्न मत-सम्प्रदायो के पारस्परिक वाद-विवाद को व्यर्थ घोषित करते हुए लिखा है—

अपनें-अपनें मत लगे बादि मचावत सोरु।
ज्यौं-त्यौं सबकौं सेइबौ, एकै नन्द किसोरु ॥[९]

धर्म और उपासना के क्षेत्र में बिहारी ने वाह्य उपचारों, विधि-विधानो पाखडो, तीर्थ-व्रतादि को निरर्थक मानते हुए हृदय की सच्ची भावना पर विशेष बल दिया है—

---

६. बिहारी-रत्नाकर, दो० स० ४२८।
७. मुक्तक काव्य-परम्परा और बिहारी, पृ० ५८।
८. बिहारी रत्नाकर, दो० सं० १८१।
९. वही, दो० सं० ५८१।

जपमाला, छापैं, तिलक सरै न एकौ कामु।
मन कांचै, नाचै वृथा, सांचै रांचै रामु॥[10]

इस प्रकार हम देखते हैं कि दर्शन और धर्म के प्रति बिहारी का दृष्टिकोण अत्यन्त उदार एव व्यापक था। डा० गुप्त ने कवि के इस व्यापक दृष्टिकोण को उनकी यथार्थवादी दृष्टि की देन मानते हुए लिखा है—'एक मध्यकालीन कवि होने के कारण बिहारी धर्म और आध्यात्मिक विचारो की सर्वथा उपेक्षा तो नही कर सकते थे किन्तु एक सच्चे यथार्थवादी की भाति उन्होने विभिन्न दार्शनिक, धार्मिक एवं साम्प्रदायिक वाद-विवादो मे पड़ना उचित नही समझा। यही कारण है कि वे अनेक प्रसगों मे परस्पर-विरोधी बातें कहते हुए दिखाई पड़ते हैं। निर्गुण और सगुण, अद्वैत और द्वैत, ज्ञान और भक्ति आदि विवादास्पद विषयों के दोनो पक्षों को स्वीकार करते हुए वे सभी मतो को मान्यता प्रदान कर देते हैं।[11]

वस्तुत बिहारी की यह समन्वयवादिता उनके धर्म, दर्शन एव अध्यात्म सम्बन्धी दृष्टिकोण की व्यापकता एवं प्रौढता को प्रमाणित करती है।

(३) सामाजिक मर्यादाओं एवं नैतिक मूल्यों के प्रति दृष्टिकोण

जैसा कि अन्यत्र कहा जा चुका है कि बिहारी जीवन का मूल लक्ष्य 'तन्त्री-नाद' 'कवित्तरस', 'रति रग' आदि का रस लूटना ही मानते थे, जो व्यक्ति ऐसा नही करता, उसका जीवन वे व्यर्थ समझते थे, अत यह स्वाभाविक था कि वे ऐसी स्थिति मे कुल की परम्पराओ,, सामाजिक मर्यादाओं एव नैतिक मूल्यों को विशेष महत्त्व नही देते। सामान्यत बिहारी परम्पराओ, मर्यादाओ व नैतिकता का विरोध नही करते किन्तु जहा सौन्दर्य और प्रेम के क्षेत्र मे इनका उल्लघन हो जाता है, उसे वे क्षम्य मानते हैं। इस बात के अनेक उदाहरण सतसई मे उपलब्ध है।

सर्वप्रथम उनके विचार मे जीवन मे सिद्धान्त और भावना, या कर्तव्य और प्रेम मे से, प्रेम का ही महत्त्व अधिक है—

---

१०. बिहारी रत्नाकर, दो० स० १४१।
११. बिहारी सतसई : वैज्ञानिक समीक्षा, डा० गुप्त, पृ० ४४।

गिरि तें ऊँचे रसिक मन, बूड़े जहां हजार।
वहै सदा पसु नरनु कौ प्रेम-पयोधि पगारु ॥[१२]

वैसे तो सभी लोग प्रेम-पयोधि मे डुबकी लगाना चाहते है किन्तु कुछ लोग कुटुम्ब की परम्पराओं, समाज की मर्यादाओं या नैतिक नियमो की बाधाओं के कारण ही इससे दूर भागते हैं। बिहारी ऐसे व्यक्तियों को पशु-तुल्य ही घोषित करते हैं।

बिहारी इस बात को रुचि पूर्वक स्वीकार करते है कि जब किसी से आंखें जुड़ती हैं तो कुटुम्ब के सम्बन्ध समाप्त हो जाते हैं।[१३] इसी प्रकार किसी के 'बिथुरे-सुथरे बालों' को देखकर भी यदि मन 'पथ-कुपथ' का विचार भूल जाए तो उसमें उसका क्या दोष है?[१४] इसी प्रकार किसी सुन्दरी के उत्तंग-उरोज-रूपी डाकू के प्रभाव मे भी रसिक लोग 'निगम-मार्ग पर नही चल पाते।[१५] इसीलिए बिहारी स्पष्ट रूप मे घोषित करते हैं कि प्रेम की दुनिया मे नीति-नियमो का निर्वाह सम्भव नहीं—

क्यों बसियै, क्यों निबहियै, नीति नेह-पुर मांहि।
लगालगी लोइन करैं, नाहक मन बंधि जांहि ॥[१६]

जो लोग यह दावा करते हैं कि उन्होंने कभी नीति-नियमो का उल्लघन नही किया, सामाजिक मर्यादाओं का अतिक्रमण करते हुए कुपथ पर पांव नही रखा, उन्हें चुनौती देते हुए बिहारी ने कहा है—'कोई युवावस्था रूपी नदी के चढ़ते समय उसमे भीगता है, कोई उसके कीचड मे रपट जाता है, कोई डूब

---

१२. बिहारी रत्नाकर, दो० सं० २५१।

१३. दृग उरझत, टूटत कुटुम, जुरत चतुर-चित प्रीति।
परति गांठि दुरजन-हियैं दई, नयी, यह रीति ॥
—वही, दो० सं० ३६३।

१४. सहज सचिक्कन, स्याम-रुचि, सुचि सुगन्ध, सुकुमार।
गनतु न मनु पथु अपथु, लखि बिथुरे सुथरे बार ॥
—वही, दो० सं० ६५।

१५. चलन न पावतु निगम-मगु, जगु उपज्यौ अति त्रासु।
कुच-उतंग गिरिवर गह्यौ, मैना मैनु मवासु ॥
—वही, दो० सं० ८७।

१६. बिहारी रत्नाकर, दो० सं० ४०७।

जाता है और बहुत से (हजारों) ऐसे हैं जो उसमे बह जाते है। इस बढती हुई उम्र मे भला कौन है जो कितने ही अवगुण नही करता।[१७] इसका अर्थ यह है कि कवि के अनुसार युवावस्था मे हर एक व्यक्ति कोई-न-कोई बुराई अवश्य करता है, यह दूसरी बात है कि कोई कम करता है और कोई ज्यादा। ऐसी स्थिति मे बिहारी परम्पराओं, मर्यादाओ एव नैतिक मूल्यो की अक्षुण्णता का समर्थन कैसे कर सकते थे?

सामाजिकता एवं नैतिकता के प्रति बिहारी के इस रसिकतापूर्ण दृष्टिकोण का परिचय उनके द्वारा चित्रित पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन के विभिन्न दृश्यो से भी प्राप्त होता है। परिवार मे ही देवर-भाभी के गुप्त सम्बन्ध को उन्होने जिस रुचि के साथ चित्रित किया है वह उनकी रसिकतापूर्ण दृष्टि का परिचायक है। कही कोई कुल-वधु देवर की कुत्सित चेष्टाओ से रात-दिन त्रस्त रहती हुई भी गृह-कलह के भय से किसी को कुछ नहीं कह पाती और दिन प्रति दिन सूखती जाती है।[१८] कही-कही नायिका देवर के गुप्त स्नेह एव प्रेमपूर्ण व्यवहार के कारण मन ही मन प्रसन्न हो रही है,[१९] तो कही वह देवर के विवाह मे इसलिए 'बिलखी बिलखी' (उदास) फिर रही है कि अब उसका स्थान कोई और ले लेगी।[२०]

इसी प्रकार पड़ोसी नायक-नायिकाओ के गुप्त सम्बन्ध का भी चित्रण बिहारी ने नि सकोच रूप मे किया है। किसी दोहे मे नायक-नायिका अपनी-अपनी अटारियो पर चढे हुए ही दृष्टियो के सकेत से हृदय का आदान-प्रदान कर रहे है[२१] तो कही झरोखे की जाली या खिडकी से उनका गुप्त-प्रेम चलता रहता है[२२]

---

१७. इक भीजैं, चहलै परैं, बूडैं, वहैं हजार।
किते न औगुन जग करै, वै नै चढती बार॥
—बिहारी रत्नाकर, दो० ४६१।

१८. कहति न देवर की कुवत कुल-तिय कलह डराति।
पजर-गत मजार-ढिग सुक ज्यौं सूकति जाति॥
—वही, दो० स० ८५।

१९. बिहारी रत्नाकर, दो० स० २४६।

२०. और सबै हरषी हसति, गावति भरी उछाह।
तुंही बहू, बिलखी फिरै क्यों देवर कैं व्याह॥
—वही, दो० ६०२।

२१. डीठिवरत बाधी अटनु, चढि धावत न डरात।
इतहिं उतहिं चित दुहुन के नट लौं आवत जात॥
—वही, दो० १६३।

इसी प्रकार उनके पारस्परिक आलिंगन-चुम्बन आदि का भी निरूपण किया गया है।[२३] बिहारी की ये नायिकाएं प्रायः विवाहिताएं या परकीयाएं हैं जो अपने पति से छिपकर या उसे धोखा देकर पड़ोसी से सम्बन्ध स्थापित करती हैं। एक दोहे में तो एक ऐसे भोले पति का भी वर्णन किया गया है जो बेचारा परदेश-गमन के समय अपने उस पड़ोसी को ही घर का सारा भार सौंप जाता है जिससे उसकी पत्नी का गुप्त सम्बन्ध है।[२४] ऐसी स्थिति मे विदेश जाने का दुःख कम एवं गुप्त प्रेमी से निष्कंटक सम्पर्क पाने का हर्ष अधिक होता है।

अतः इसमें कोई सन्देह नहीं कि बिहारी की दुनिया में रसिकता के आगे नैतिकता का कोई मूल्य नहीं है। इसीलिए उनके नायक किसी भी युवती को घर में अकेली पाकर उनका हाथ पकड़ लेने मे या किसी तरुणी की गोद से बच्चे को लेने के बहाने उसके वक्ष को छू लेने मे कोई संकोच नहीं करते।[२६] तो दूसरी ओर उनकी नायिकाए घर-घर मे बुराई फैल जाने के बाद भी अपने घर मे न ठहरने तथा लाज-लगाम को तोड़कर कुपथ पर अग्रसर होने का साहस दिखाती हैं।[२७]

अतः संक्षेप मे कहा जा सकता है कि सामाजिक मर्यादाओं एव नैतिक मूल्यों मे बिहारी की आस्था अधिक नहीं है। अवश्य ही वे इनके उल्लघन को 'अव-गुण' दोष, कुपथ आदि की संज्ञा देते हुए सैद्धान्तिक स्तर पर इन्हे मान्यता देते हुए भी व्यवहार मे इनका उल्लघन मानव-मन की विवशता के रूप मे स्वीकार करते है। इस दृष्टि से कहा जा सकता है कि बिहारी न तो आदर्शवादी हैं और न ही स्वच्छन्दतावादी अपितु यथार्थवादी है। जीवन के कटु एवं कुत्सित यथार्थ को भी वे सहज ही स्वीकार कर लेते हैं।

(४) राजनीति एवं प्रशासन सम्बन्धी दृष्टिकोण

बिहारी राज्याश्रित कवि थे, अतः राजाओं व राज-दरबारो से उनका गहरा सम्बन्ध था। ऐसी स्थिति मे स्वाभाविक है कि उन्हे राजनीति एव प्रशासन

---

२२. बिहारी रत्नाकर, दो० स० २६३।
२३. वही, दो० सं० ५०५ एव ५७१।
२४. चलत देत आभारु सुनि उही परोसिहिं नाह।
लसी तमासे की दृगनु हांसी आसुनु मांह॥
—वही, दो० सं० ५५१।
२५ वही, दो० स० ५८२।
२६ बिहारी-रत्नाकर, दो० स० ३८६।
२७. वही, दो० सं० ४६०।

के अनुभव एवं चिन्तन का अवसर मिला। उन्होंने अपने अनेक दोहों में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में अपनी तद् विषयक अनुभूतियों एवं प्रतिक्रियाओं को व्यक्त किया है जिससे उनके राजनैतिक दृष्टिकोण का परिचय मिलता है। यहाँ संक्षेप मे इस पर विचार किया जाता है।

(क) द्वैत-शासन प्रजा के लिए घातक है—बिहारी के समय देश के अनेक भागो पर दोहरी शासन प्रणाली लागू थी, अर्थात् एक ओर केन्द्र मे मुगल-शासन की सत्ता थी तो दूसरी ओर उनके अधीन प्रादेशिक एवं स्थानीय हिन्दू राजा या मुस्लिम शासक होते थे—ऐसी स्थिति मे प्रजा के हितो के लिए तो पूर्णत कोई भी उत्तरदायी नही होता था किन्तु उसका शोषण दोनो ही सत्ताओ द्वारा होता था। इस प्रकार यह द्वैध शासन प्रणाली प्रजा के लिए घातक ही सिद्ध होती थी, इसी का निरूपण निम्नांकित दोहे मे किया गया है—

दुसह दुराज प्रजानु कौ क्यो न बढ़ै दुःख-दंदु।
अधिक अंधेरौ जग करत मिलि मावस रवि-चंदु ॥[२८]

(ख) सत्ता-परिवर्तन पर अधिकारों में परिवर्तन—जब शासन मे किसी प्रकार का परिवर्तन होता है तो उसका प्रभाव उससे सम्बन्धित विभिन्न लोगों पर पडना स्वाभाविक है। नव विजित प्रदेशो पर अधिकार प्राप्त करके एक प्रशासक किस प्रकार देय एवं प्राप्य रकमो मे घटा बढी कर देता है, इसका प्रतिपादन करते हुए बिहारी ने लिखा है—

नव नागरितन मुलुक लहि जोवन-आमिर-जोर।
घटि बढ़ि तैं बढ़ि-घटि रकम करी और की और ॥[२९]

इसी प्रकार एक कुशल प्रशासक के लिए यह भी आवश्यक है कि वह अपनी सत्ता को दृढ करने के लिए अपने पक्ष के व्यक्तियों के पद, अधिकारों एवं सम्मान मे अभिवृद्धि करे—

अपने अंग के जानि कै जोवन-नृपति प्रवीन।
स्तन, मन, नैन, नितम्ब कौ बडौ इजाफा कीन ॥[३०]

---

२८ बिहारी रत्नाकर, दो० सं० २५७।
२९ वही, दो० सं० २२०।
३०. वही, दो० सं० २।

यौवनागम के फलस्वरूप नारी के विभिन्न अंगों में होने वाले परिवर्तन व विकास के रूपक के द्वारा कवि ने राजनीति के उपर्युक्त सूत्र को अत्यन्त कुशलता-पूर्वक प्रस्तुत कर दिया है।

(ग) राजनीतिक हिंसा का लक्ष्य : स्वार्थ या परमार्थ—मध्यकालीन राजपूत शासक वीर योद्धा थे किन्तु उनकी वीरता का उपयोग न तो उनके स्वार्थों की पूर्ति के लिए होता था और न ही किसी महान लक्ष्य की साधना के लिए। वे मुगल शासकों की अधीनता में अपनी ही जाति के स्वतन्त्र शासकों के विरुद्ध लड़कर अपनी शक्ति का अपव्यय करने में लगे हुए थे। अत: उनकी स्थिति उस बाज जैसी थी जो पराये हाथों में पड़कर स्वजाति के पक्षियों के वध में लगा रहता है। जब महाराजा जयसिंह ने शिवाजी के विरुद्ध अभियान किया तो बिहारी ने इसी सत्य का उद्घाटन करते हुए लिखा—

स्वारथ सुकृतु न श्रमु वृथा देखि विहंग विचारि।
बाज पराएं पानि परि तूं पच्छीनु न मारि॥[३१]

वस्तुत: बिहारी के अनुसार युद्ध और हिंसा का लक्ष्य या तो अपना राज्य विस्तार हो अथवा किसी महान् लक्ष्य की पूर्ति हो—किन्तु हिन्दू राजाओं द्वारा मुगलों के हित किये गए युद्धों से इनमें से किसी भी लक्ष्य की पूर्ति नहीं होती थी, अत: उनके अनुसार यह श्री एवं शक्ति का दुरुपयोग ही था।

(घ) शासक शक्तिहीन पर ही अधिक अत्याचार करता है—जो व्यक्ति या वर्ग जितना अधिक निर्बल, शक्तिहीन या असहाय होगा, शासक वर्ग उसी पर अधिक अत्याचार करेगा—यह एक कटु सत्य है जिसे स्वीकार करते हुए बिहारी ने लिखा है—

कहै यहै श्रुति सुम्रत्यौ, यहै सयाने लोग।
तीन दबावत निसकहीं पातक, राजा, रोग॥[३२]

(ङ) सत्ताधारियों के कार्य की निन्दा कौन करे?—यदि सत्ताधारी लोग कोई अनुचित कार्य भी करें तो उनकी आलोचना कौन कर सकता है? अर्थात् उनकी आलोचना करना खतरे का काम है। गुलाब की डालियाँ कितनी शुष्क एवं कंटीली है, किन्तु विधाता ने उन्हें इतने सुन्दर फूल दिये हैं कि कुछ नहीं कहा जा

---

३१. बिहारी रत्नाकर, दो० स० ३००।
३२. वही, दो० सं० ४२६।

सकता।[३३] यही बात सत्ताधारियों पर लागू होती है। उनके कार्य का औचित्य-अनौचित्य कौन बता सकता है ?

(च) पदाधिकार एवं पद-लालसा से व्यक्ति में परिवर्तन—राजनीति के क्षेत्र में सबसे बड़ा संघर्ष उच्च पदों की प्राप्ति एवं पदाधिकारियों के लिए होता है इसके लिए कुछ व्यक्ति अपने स्वाभिमान को त्यागकर शासक वर्ग की उपेक्षा या घृणा को सहन करते हुए भी उसके साथ चिपके रहते हैं। ऐसा करते समय वे अपने कुल-परिवार एवं समाज की मर्यादाओं को भी भूल जाते हैं। वस्तुतः कई बार अपना सर्वस्व लुटाकार ही उन्हें उच्च पद प्राप्त होता है, फिर भी यह लालसा छूटती नहीं है। निम्नांकित दो दोहों में बिहारी ने इसी तथ्य का निरूपण नारी के गले में पड़े हुए मुक्ता-हार के माध्यम से किया है—

जनमु जलधि, पानिपु बिमलु, भौ जग आधु अपारु।
रहै गुनी ह्वै गर-परयौ, भलै न मुक्ता-हारु॥[३४]
+ + +
गहै न नैकौ गुन-गरबु हंसौ सबै संसारु।
कुच उचपद-लालच रहै गरैं परैं हूं हारु॥[३५]

मुक्ता का जन्म समुद्र जैसे महान् देश में होता है, कितनी विमल आभा से वह मंडित होता है, और संसार में उसका कितना सम्मान होता है। इतना गुण-युक्त होते हुए भी वह दूसरों के गले पड़ा रहता है, क्यों ? इसका उत्तर देते हुए अगले दोहे में बताया गया है कि उरोज रूपी उच्च पद की प्राप्ति के लिए ही वह एक ओर तो निज गुण गौरव एवं आत्म सम्मान को भूल जाता है तो दूसरी ओर सारे संसार के उपहास को सहन कर लेता है।

किन्तु क्या इस प्रकार स्वयं को गिराकर प्राप्त किया हुआ पद व्यक्ति को सचमुच ऊंचा उठा देता है ? इसके उत्तर में बिहारी का विचार है कि भले ही कोई पदाधिकार के बल पर लोगों को मूर्ख बना दे—उनकी दृष्टि में ऊँचा उठ जाए किन्तु अन्ततः तो वह वही रहता है जो वस्तुतः होता है। जब कुर्सी छिन जाती है तो कोई उसे टके सेर भी नहीं पूछता—

---

३३ बिहारी रत्नाकर, दो० सं० ४३१।
३४. वही, दो० सं० ३७६।
३५. वही, दो० सं० ३७७।

पाई तरनिकुच उच्चपदु चिरम ठग्यौ सब गाऊँ ।
छुटैं ठौरु रहि है वहै, जु हो मोलु, छबि, नाऊँ ॥[३६]

इस प्रकार हम देखते हैं कि राजनीति एवं प्रशासन के क्षेत्र में भी बिहारी की जीवन दृष्टि यथार्थमूलक थी। वे राजनीति में शुद्ध नैतिकता, धर्म एवं परमार्थ को ही नही स्वार्थपूर्ति, अपने पक्ष के विस्तार एव अपनी शक्ति वृद्धि को भी आवश्यक मानते हैं, क्योंकि इन के बिना इस क्षेत्र मे सफलता प्राप्त नही की जा सकती। किन्तु मुगलो का द्वैधात्मक शासन तथा हिन्दू नरेशों का मुगल साम्राज्य के विस्तार के लिए अपनी शक्ति का अपव्यय करना बिहारी की दृष्टि मे प्रशसनीय नही था। पद एव अधिकार प्राप्ति के लिए हिन्दू सामन्तों का अपने कुल, परिवार एवं धर्म को भूल कर मुस्लिम शासको की सेवा मे लगे रहना भी बिहारी की स्वतन्त्र प्रकृति को स्वीकार्य नही था। दीन-हीन एवं असहाय प्रजा के प्रति भी उनकी सहानुभूति थी क्योकि वे अनुभव करते थे कि शासकगण उसकी निर्बलता के कारण ही उस पर अत्याचार कर रहे थे। अस्तु, कहा जा सकता है कि बिहारी ने राजनीति के विषय मे अधिक नही लिखा किन्तु थोडे से दोहों में ही उन्होने अप्रत्यक्ष रूप मे जो कुछ कहा है, उससे उनके राजनीतिक दृष्टिकोण को स्पष्टता पूर्वक समझा जा सकता है।

(५) लोकनीति एवं लोक-व्यवहार सम्बन्धी दृष्टिकोण

बिहारी ने विभिन्न प्रसगो में मानव-प्रकृति, लोकनीति एवं लोक-व्यवहार के सम्बन्ध मे भी अपने विचारों को व्यक्त किया है जिनसे उनके व्यावहारिक जीवन एवं लोक व्यवहार सम्बन्धी दृष्टिकोण का पता चलता है। यहाँ कतिपय शीर्षकों में उनके तत्सम्बन्धी विचारो का विश्लेषण प्रस्तुत किया जाता है—

(क) मूलतः मानव-प्रकृति अपरिवर्तनीय है—बिहारी का दृढ विश्वास था कि कुछ मनुष्य जन्म से ही नीच प्रकृति के होते हैं तो कुछ उच्च प्रकृति के। दूसरे लोगों के प्रभाव से भले ही थोडी देर के लिए उनकी प्रकृति में कोई अन्तर आ जाय किन्तु अन्तत उनकी प्रकृति वहीं रहती है। जैसे, नल के द्वारा पानी को ऊँचा चढाया जा सकता है किन्तु अन्ततः वह नीचाई की ओर अग्रसर होता है, वही स्थिति मानव प्रकृत्ति की है—

---

३६. बिहारी रत्नाकर, दो० सं० २३७।

कोटि जतन कोऊ करौ, परै न प्रकृतिहिं बीचु।
नल-बल जलु ऊँचै चढ़ै अंत, नीच कौ नीचु ॥[३७]

ऐसी स्थिति में किसी व्यक्ति की मूल प्रकृति को बदलने का प्रयास करना निरर्थक है।

प्रकृति के अनुसार ही व्यक्ति में स्वभाव एवं उसकी रुचियों का विकास होता है। अतः इस क्षेत्र में भी प्रकृति का ही वैशिष्ट्य रहता है अर्थात् मनुष्य की रुचियाँ भी उसकी प्रकृति पर ही निर्भर करती हैं। ऐसी स्थिति में किसी की रुचियों एवं सहज प्रवृत्तियों को बदल पाना भी सम्भव नहीं है। इसी का निरूपण करते हुए कहा गया है—

भावरि-अनभावरि-भरे करौ कोरि बकवादु।
अपनी-अपनी भाँति कौ छुटै न सहजु सवादु ॥[३८]

इस प्रकार बिहारी मानव की मूल प्रवृत्तियो, रुचियो एव सहज प्रवृत्तियो को अपरिवर्तनीय मानते हुए नीच प्रकृति के लोगों में सुधार या परिवर्तन के प्रयास को निरर्थक मानते थे।

(ट) **मनुष्यता की सच्ची कसौटी**—बिहारी के विचार से मनुष्यता की सच्ची कसौटी उसके गुण हैं। जो व्यक्ति गुणवान हैं—जो प्रतिभा, विद्वता एवं सदाशयता आदि गुणों से मंडित है, उसका महत्त्व कभी कम नही हो सकता। कई बार बाह्य साधनो, धन, वैभव, ऐश्वर्य, पद आदि के कारण व्यक्ति प्रतिष्ठा प्राप्त कर लेता है तथा वह जनता की वाहवाही लूटने में भी सफल हो जाता है, किन्तु बिहारी के विचार से इसी से वह पूज्य या माननीय नही हो जाता है व्यक्ति का सच्चा एव स्थायी मूल्य तो उसके निजी गुणों के आधार पर ही होता है। बाह्य-आडम्बरो व लोक-प्रशसा के आधार पर नहीं—

बड़े न हूजै गुननु बिनु बिरद बड़ाई पाइ।
कहत धतूरे सौं कनकु, गहनौ गढ़यौ न जाइ ॥[३९]
+ + +
गुनी गुनी सबकै कहैं, निगुनी गुनी न होतु।
सुन्यौ कहूं तरु अरक तैं अरक-समानु उदोतु ॥[४०]

---

३७. बिहारी रत्नाकर, दो० स० ३४१।
३८. वही, दो० स० ६३७।
३९. वही, दो० स० १९१।
४०. वही, दो० स० ३५१।

कई बार निम्न श्रेणी के लोग भी अपनी चाटुकारिता या मिथ्या आत्म-प्रशंसा के बल पर सम्मानित होते देखे जाते हैं किन्तु इस प्रकार का सम्मान कुछ दिनो तक ही होता है—

> दिन दस आदरु पाइकै करि लै आपु बखानु।
> जौ लगि काग ! सराधपखु तौ लगि तौ सनमानु ॥[४१]

अस्तु, बिहारी सच्ची योग्यता एवं उच्च गुणों के आधार पर ही मान-प्रतिष्ठा प्राप्त करना उचित समझते थे, *अवसरवादिता मे उनका विश्वास नही था*।

(ग) विनम्रता : सज्जनता एवं उच्चता की कसौटी—सज्जनता की सबसे बडी कसौटी विनम्रता है। सज्जन जितना ऊचा उठता है, जितना अधिक सम्पन्न होता जाता है, उतना ही वह अधिक विनम्र होता जाता है किन्तु इसके विपरीत दुर्जन धन-वैभव पाकर अधिकाधिक उदण्ड हो जाता है। इसी धारणा को व्यक्त करते हुए बिहारी ने लिखा है—

> संपति केस, सुदेस नर नवत, दुहुनि इक बानि।
> विभव सतर कुच, नीच नर नरम विभव की हानि ॥[४२]

बिहारी का यह दृढ विश्वास था कि जो व्यक्ति जितना अधिक विनम्र होगा वह उतना ही अधिक ऊचा उठेगा—

> नर की अरु नल-नीर की गति एकै करि जोइ।
> जेतौ नीचौ ह्वै चलै, तेतौ ऊंचौ होई ॥[४३]

(घ) दुष्ट व्यक्ति कभी भी विश्वसनीय नहीं—दुष्ट व्यक्तियो के प्रति बिहारी ने अत्यन्त गहरी घृणा की भावना व्यक्त करते हुए कहा है कि उनका किसी भी स्थिति मे विश्वास नहीं करना चाहिए। ये लोग अपने स्वार्थ से प्रेरित होकर कई बार अत्यन्त झुककर पैरो मे गिर पड़ते हैं किन्तु मौका लगने पर काटे की तरह आघात करने से भी नहीं चूकते, अत दुष्ट व्यक्ति चाहे कितना ही झुके उस पर विश्वास नही करना चाहिए।

इतना ही नहीं, कई बार दुष्ट व्यक्ति सज्जनता का भी अभिनय करता है तो वह अकारण नहीं होता, उसके पीछे भी उसका कोई कुत्सित लक्ष्य होता है

---

४१. बिहारी रत्नाकर, दो० स० ४३४।
४२. वही, दो० स० ११७।
४३. वही, दो० स० ३२१।

अत. इस स्थिति मे भी उसकी सज्जनता किसी अनिष्ट की ही आशका उत्पन्न करती है—

बुरौ बुराई जौ तजै, तौ चितु खरौ डरातु।
ज्यौं निकलंकु मयंकु लखि गनैं लोग उतपातु ॥[४४]

(ङ) शठे शाठ्यं समाचरेत्—बिहारी को यह भी विश्वास था कि दुष्ट व्यक्तियो को दुष्टता या कठोरता से ही ठीक किया जा सकता है। उन पर जितनी चोट पड़ेगी उतने ही वे ऊंचे उठेंगे—

नीच हियैं हुलसे रहैं गहे गेंद के पोत।
ज्यौं-ज्यौं माथैं मारियत, त्यौं-त्यौं ऊंचे होत ॥[४५]

(च) अर्थ का जीवन में महत्त्व—बिहारी जीवन मे अर्थ का, धन-सम्पदा का महत्त्व स्वीकार करते थे किन्तु उसे जीवन का साधन ही मानते थे, साध्य नही। इसीलिए वे धन-प्राप्ति के लिए अपने व्यक्तित्व को गिराना या आत्म सम्मान को लुटाना उचित नही समझते थे जबकि लोभी व्यक्ति अपने अर्थ-लोभ के वशीभूत होकर तुच्छ से तुच्छ व्यक्ति के आगे गिडगिडाने मे भी कोई सकोच अनुभव नही करता। ऐसे व्यक्तियो की स्थिति का चित्रण करते हुए बिहारी ने लिखा है—

घर घर डोलत दीन ह्वै जनु-जनु जाचतु जाइ।
दियें लोभ-चसमा चखनु लघु पुनि बड़ौ लखाइ ॥[४६]

लोभी व्यक्ति की ही भांति वह कजूस भी निन्दनीय है, जो कि धन सग्रह के लिए सर्वत्र ही कृपणता का परिचय देता है। ऐसे व्यक्ति को बिहारी का परामर्श है—

मीत, न नीति गलीतु ह्वै जौ धरियै धनु जोरि।
खायैं खरचैं जौ जुरै, तौ जोरियै करोरि ॥[४७]

किन्तु कृपण व्यक्ति धन का सग्रह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए नही करता अपितु वह उसके जीवन का साध्य ही बन जाता है, इसीलिए ज्यो-

---

४४. बिहारी रत्नाकर, दो० सं० ५८४।
४५. वही, दो० सं० ४६१।
४६. वही, दो० सं० १५१।
४७. वही, दो० सं० ४८१।

ज्यों उसकी सम्पत्ति बढ़ती जाती है त्यों-त्यों उसकी कृपणता में भी अभिवृद्धि होती जाती है।

जेती संपति कृपन कैं, तेती सूमति जोर।
बढ़त जात ज्यौं-ज्यौं उरज, त्यौं-त्यौं होत कठोर॥[४८]

अस्तु, बिहारी के विचार से लोभ और कृपणता—दोनों ही जीवन की अर्थ नीति की अतिवादिता की सूचक सीमाएं हैं, जो निन्दनीय है।

(छ) अर्थोपलब्धि जन्य गर्व का दूषित प्रभाव—कुछ लोग धन-वैभव प्राप्ति के कारण गर्व से उन्मत्त होकर मान-मर्यादाओ का भी अतिक्रमण करने लगते हैं। ऐसे व्यक्तियो को लक्ष्य करते हुए कवि ने लिखा है—

कनकु कनक तें सौगुनौ मादकता अधिकाइ।
उहिं खाएं बौराई इहिं पाएं ही बौराइ॥[४९]
+ + +
अरे परेखौ को करैं, तुंही बिलोकि विचारि।
किंहिं नर, किंहिं सर राखियैं खरैंबढ़ें परिपारि॥[५०]

जिस प्रकार कुछ लोगो के लिए धन की प्राप्ति घातक सिद्ध होती है, वहां उसका नष्ट होना भी व्यक्ति के लिए नाश का कारण बन सकता है—

बढ़त-बढ़त संपति-सलिलु मन-सरोजु बढ़ि जाइ।
घटत-घटत सु न फिरि घटैं, बरु समूल कुम्हिलाइ॥[५१]

इसलिए व्यक्ति को धन के प्रति आसक्त न होकर संतोष से काम लेना चाहिए। यदि व्यक्ति सन्तोषी बन जाए तो वह न केवल अपने आत्म-सम्मान, मानसिक संतुलन एवं शारीरिक स्वास्थ्य को सुरक्षित रख सकेगा अपितु वह मोक्ष का आनन्द भी प्राप्त कर सकेगा—

जात-जात बितु होतु है ज्यौं जिय मैं संतोषु।
होत-होत जौ होई, तौ होइ घरी मैं मोषु॥[५२]

---

४८. बिहारी रत्नाकर, दो० सं० १११।
४९. वही, दो० सं० १९२।
५०. वही, दो० सं० ६२०।

इस प्रकार बिहारी धन-सम्पदा को जीवन में इतना अधिक महत्व नहीं देते थे कि उसके लिए व्यक्ति अपने आत्म-सम्मान व मानसिक सन्तुलन आदि को खोकर लोभ या कृपणता की वृत्तियो का आश्रय ग्रहण करे। बिहारी ने स्वय भी अपने जीवन मे इस नीति को चरितार्थ किया है—एक ही राजा के आश्रय मे जीवन व्यतीत कर देना तथा एक ही रचना पर सतोष करना, उनकी इसी नीति का परिणाम माना जा सकता है।

अस्तु, लोक-व्यवहार के क्षेत्र मे भी बिहारी यथार्थवादी, एवं मध्यमार्गी दिखाई पडते हैं। वे एक ओर मानव के उच्च एव उदात्त गुणो के प्रति गहरी आस्था व्यक्त करते हुए उनके आधार पर ही व्यक्ति का वास्तविक एव स्थायी सम्मान मानते है तो दूसरी ओर दुष्ट व्यक्तियो के प्रति 'शठे शाठ्य समाचरेत्' की नीति का समर्थन करते हुए उनके प्रति गहरा अविश्वास व्यक्त करते हैं। वे सज्जनता एव दुर्जनता को या मानव-प्रकृति की उच्चता या नीचता को जन्म-जात गुण मानते हुए उसे अपरिवर्तनीय सिद्ध करते हैं। अर्थ के प्रति भी सतुलित दृष्टि का परिचय देते हुए अर्थ-प्राप्ति के लिए लोभ या अर्थ-सग्रह मे कृपणता अथवा अर्थ-प्राप्ति से उत्पन्न गर्व व अर्थनाश से उत्पन्न क्षोभ को वे निन्दनीय घोषित करते हैं। विनम्रता एवं सतोष को वे व्यक्ति के महत्वपूर्ण गुणो के रूप मे स्वीकार करते हैं।

(६) कला और साहित्य के प्रति दृष्टिकोण

प्रत्येक कलाकार या साहित्यकार के मन मे स्पष्ट या अस्पष्ट रूप से कला और साहित्य के प्रति कोई न कोई धारणा अवश्य होती है, जो कि उसकी सर्जन शक्ति को प्रेरित एव नियन्त्रित करती है तथा जिसकी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप मे अभिव्यक्ति उसकी रचना मे भी प्राय हो जाती है। इसी को हम कला या साहित्य सम्बन्धी दृष्टिकोण की सज्ञा दे सकते हैं।

जैसा कि पीछे स्पष्ट किया जा चुका है, बिहारी का जीवन के प्रति यथार्थ-परक दृष्टिकोण था, अत यह स्वाभाविक है कि कला और साहित्य के प्रति उनका यही दृष्टिकोण रहता। आदर्शवादी कलाकार कला को किसी महान् लक्ष्य की पूर्ति का साधन मानता हुआ उसके माध्यम से उच्च विचारो एव उदात्त-भावनाओं की व्यजना इस प्रकार करता है कि जिससे एक ओर तो लोक-मंगल की स्थापना हो तथा दूसरी ओर उसे लोकोत्तर सिद्धि या मोक्ष प्राप्त हो। इसके विपरीत

५१. बिहारी रत्नाकर, दो० स० ३३१।
५२. वही, दो० स० २३५।

स्वच्छन्दतावादी कवि सौन्दर्य, प्रेम और विरह की अभिव्यंजना ही अपनी कला का लक्ष्य मानता है। वह निजी कल्पनाओं, भावनाओं एवं अनुभूतियों की व्यंजना में कला को मनोविनोद एवं लौकिक सुख के साधन के रूप में ही ग्रहण करता है। बिहारी ने भी कला और काव्य के प्रति इसी दृष्टिकोण का परिचय देते हुए लिखा है—

तंत्री-नाद, कवित्त-रस, सरस राग, रति-रंग।
अनबूड़े बूड़े, तरे जे बूड़े सब अंग॥[५३]

यहाँ कवि ने संगीत और काव्य को 'राग' और 'रति-रंग' के समकक्ष स्थान देकर स्पष्ट कर दिया कि उसकी दृष्टि में कला और साहित्य का भी जीवन में वही स्थान है जो भोग विलास के अन्य प्रकारों एवं साधनों का है। उनके काव्य में नायिका के नख-शिख, उसके यौन अंगों, उसकी चेष्टाओं, मुद्राओं और हाव-भावों या संयोग शृंगार की विभिन्न परिस्थितियों और दशाओं का चित्रण प्रमुख रूप में हुआ है। इससे भी यही सिद्ध होता है कि कला और काव्य को वे मनोविनोद एवं विलासिता के विभिन्न अंगों एवं साधनों के रूप में ही स्वीकार करते थे। वैसे देखा जाए तो इसके लिए बिहारी को दोष भी नहीं दिया जा सकता क्योंकि एक ओर तो संस्कृत-प्राकृत की मुक्तक-काव्य-परम्परा में बहुत पहले से यही दृष्टिकोण चला आ रहा था, तथा दूसरी ओर रीतिकाल के अन्य दरबारी कवियों का भी प्रायः यही दृष्टिकोण रहा है। प्राकृत की 'गाथा सप्तशती' के तो आरम्भ में ही कवि ने घोषित किया है कि यदि काम तत्त्व का सम्यक् ज्ञान प्राप्त करना चाहते हो तो मेरा काव्य पढ़ो। इसी प्रकार अमरुक एवं भर्तृहरि ने सौन्दर्य एवं यौवन के उपभोग को ही अपने शृंगारी काव्य का चरम लक्ष्य माना है। वस्तुतः 'काम-सूत्र' में भी काम-वृद्धि के साधनों में कला और काव्य की चर्चा की गई है, अतः मध्यकालीन दरबारी कवियों ने भी काव्य को इसी रूप में लिया है।

काव्यादर्श

इस प्रसंग में एक प्रश्न यह भी उठता है कि बिहारी का काव्यादर्श क्या था? अर्थात् वे काव्य के मानदण्ड के रूप में किस तत्त्व या सिद्धान्त को स्वीकार करते थे। इस प्रश्न पर पहले भी अनेक विद्वानों ने विचार करते हुए कतिपय निष्कर्ष प्रस्तुत किये हैं। डा० रामसागर त्रिपाठी ने इस प्रश्न पर गम्भीरता से विचार करने के अनन्तर उन्हें ध्वनिवादी सिद्ध किया है। उनके शब्दों में—'बिहारी के

५३. बिहारी रत्नाकर, दो० सं० ९४।

समस्त काव्य का उपादान ध्वनि-सिद्धान्त के द्वारा ही संभव है । अतएव बिहारी ध्वनि-सम्प्रदायवादी सिद्ध होते है[५४] ।' अपनी इस स्थापना के समर्थन में डा० त्रिपाठी ने प्रतिपादित किया है कि ध्वनि-सम्प्रदाय मे प्रत्यक्ष एवं स्फुट अर्थ की अपेक्षा अप्रत्यक्ष एव अस्फुट या प्रतीयमान अर्थ को अधिक महत्त्व प्रदान किया जाता है । बिहारी ने भी अनेक दोहो मे इस धारणा का समर्थन किया है, जैसे—

दुरत न कुच बिच, कंचुकी चुपरी, सारी सेत ।
कवि-आंकनु के अरथ लौं, प्रगटि दिखाई देत ।।[५५]

अपनी स्थापना के पक्ष मे डा० त्रिपाठी ने एक अन्य तर्क यह दिया है कि ध्वनि के प्रायः सभी भेदोपभेदो के उदाहरण बिहारी के काव्य मे मिल जाते हैं । इस प्रकार डा० त्रिपाठी के मतानुसार बिहारी ध्वनिवादी थे, किन्तु आगे चलकर अपने इसी शोध-प्रबन्ध मे वे बिहारी को अलकारवादी, वक्रोक्तिवादी, रीतिवादी एव रसवादी भी स्वीकार करते हुए अपने ही निष्कर्ष पर प्रश्न चिह्न लगा देते हैं । अलकार-योजना की दृष्टि से 'बिहारी-सतसई' पर विचार करते हुए वे इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि बिहारी ने यत्नपूर्वक एव बडी सावधानी से सतसई मे अलंकारो की योजना की है । उनके शब्दो मे—इनका एक भी दोहा ऐसा नही है जिसमें *चमत्कार उक्ति वैचित्र्य या किसी अलकार का प्रयोग न पाया जाता* हो । यद्यपि यह तो नही कहा जा सकता कि बिहारी ने सभी अलकारो का प्रयोग किया है किन्तु अधिकतर अलकार बिहारी की रचना मे मिल जाते हैं ।—बिहारी के अलकार-प्रयोग की सबसे बडी विशेषता यह है कि इसमे पूरी सावधानी बरती गई है ।—किसी-किसी दोहे मे सात-सात आठ-आठ अलकार उलझे हुए हैं ।[५६] इसी प्रकार आगे चलकर जब वे वक्रोक्ति-सिद्धान्त की दृष्टि से सतसई पर विचार करते हैं तो उन्हें लगता है कि बिहारी पर वक्रोक्ति सिद्धान्त का गहरा प्रभाव था । उनके विचारानुसार बिहारी वक्रोक्ति को ही सौन्दर्य के अधिष्ठान के रूप मे स्वीकार करते थे । इसी लिए उन्होंने लिखा था—

पद-रचना, बरुनी, अलक, चितवनि, भौंह, कमान ।
आघु बंकाईही चढ़ै, तरुनि, तुरंगम, तान ।।[५७]

---

५४. मुक्तक काव्य-परम्परा और बिहारी, पृ० १८३ ।
५५. बिहारी रत्नाकर, दो० सं० १८८ ।
५६. मुक्तक काव्य-परम्परा और बिहारी (द्वि० सं०), पृ० ३२६ ।
५७. बिहारी-रत्नाकर, दो० सं० ३१६ ।

अन्त में डा० त्रिपाठी लिखते हैं—'बिहारी का कोई भी दोहा इस वक्रता से रिक्त नही है। यही कारण है कि आलोचक-जगत् मे बिहारी चमत्कारोपासक कवि माने जाते है और कलात्मक सौंदर्य की दृष्टि से ही बिहारी का महत्त्व स्वीकार किया जाता है।'[५८] इसी प्रकार जब बिहारी सतसई मे वक्रोक्ति के सभी प्रकार भेद एव उदाहरण उपलब्ध हो जाते हैं तो वे स्वीकार करते है—'ऊपर के विवेचन से व्यक्त होता है कि न्यूनाधिक रूप में बिहारी मे सभी प्रकार की वक्रताओ के दर्शन होते है।'[५६]

अन्यत्र रीति-गुणो के प्रसग मे डा० त्रिपाठी का निष्कर्ष है कि बिहारी के काव्य में सर्वत्र ही रीति-गुणों—विशेष माधुर्य का प्रयोग हुआ है। उनके शब्दो मे 'बिहारी-सतसई का प्रत्येक दोहा पडितराज की माधुर्य की परिभाषा से नितांत आवद्ध है।'[६०] एक अन्य प्रसग मे उक्त विद्वान को यह भी मान्य है कि 'बिहारी का झुकाव कुछ रस की ओर विशेष ज्ञात होता है।'[६१] इसके समर्थन मे वे बिहारी की एक पक्ति को भी उद्धृत करते हैं,—'करी बिहारी-सतसई भरी अनेक सवाद'—डा० त्रिपाठी के मतानुसार यहा 'सवाद' शब्द 'रसास्वाद' का द्योतक है, अतः बिहारी का रस-सिद्धान्त की ओर झुकाव मानना चाहिए।

इस प्रकार डा० त्रिपाठी ने बिहारी-सतसई मे ध्वनि, अलकार, वक्रोक्ति, रीति एवं रस आदि सभी की प्रमुखता मानते हुए परस्पर विरोधी निष्कर्ष प्रस्तुत किए हैं। उन्होंने 'गगा गये गगादास और जमना गये जमनादास' वाली कहावत को चरितार्थ करते हुए जिस तत्त्व के आधार पर सतसई पर विचार किया उसी को उन्होने सतसई मे प्रमुख मान लिया है। ऐसी स्थिति मे उनका कोई भी निष्कर्ष ग्राह्य नही हो पाता।

डा० गणपति चन्द्र गुप्त ने बिहारी को ध्वनिवादी मानने की बात को अस्वीकार करते हुए प्रतिपादित किया है कि बिहारी ने रस, ध्वनि, अलकार, रीति, वक्रोक्ति आदि विभिन्न तत्त्वो का संग्रह या समन्वय प्रस्तुत किया है, अतः उन्हें किसी एक सिद्धान्त या वाद का अनुयायी मानना उचित नही। उनके शब्दों में —"बिहारी को ध्वनिवादी, अलंकारवादी या रसवादी कहने की अपेक्षा सग्रहवादी या समन्वयवादी कहना अधिक उचित होगा। वे किसी एक ही सिद्धान्त या प्रवृत्ति से बंध जाने की अपेक्षा लोक-रुचि के अनुसार सभी प्रमुख सिद्धान्तों

---

५८. मुक्तक काव्य-परम्परा और बिहारी (द्वि० सं०), पृ० ३०८।
५६. वही, पृ० ३५५।
६०. वही, पृ० ३२२।
६१. वही, पृ० १४२।

एवं प्रवृत्तियों को अपनाना अधिक उचित समझते थे।"[६२] वस्तुत: इस मत का समर्थन इस बात से होता है कि स्वयं बिहारी ने अपनी सतसई के बारे में लिखा है—'करी बिहारी सतसई भरी अनेक सवाद', अत: बिहारी ने अपनी रचनाओं को विभिन्न स्वादों या तत्त्वों से युक्त बनाया है। इसका कारण भी स्पष्ट है—वे रुचि-भेद में विश्वास करते थे। सौन्दर्य के सम्बन्ध में उन्होंने लिखा था—"समय-समय पर सभी सुन्दर होते हैं। कोई भी असुन्दर नहीं होता, जिसकी जिसमें जितनी रुचि होती है, वही उसे उतना ही सुन्दर लगता है।" अपनी इस मान्यता के अनुसार अपने युग की सभी रुचियों को ध्यान में रखते हुए उन्होंने विभिन्न विषयों, तत्त्वों एवं प्रवृत्तियों को अपनी रचना में समाविष्ट किया है। इसीलिए उन्होंने एक ओर शृंगार, भक्ति और नीति, एवं वैराग्य का निरूपण किया है तो दूसरी ओर रस, ध्वनि, अलंकार, वैचित्र्य, माधुर्य को भी समन्वित किया है। ऐसी स्थिति में बिहारी को किसी एक सिद्धान्त का अनुयायी या वादी कहना अनुचित होगा, और यदि उन्हें "वादी" कहना ही है तो हमारे विचार में उन्हें 'लोक-रुचिवादी', 'संग्रहवादी' या 'समन्वयवादी' कहना उचित होगा।

रीति-सम्बन्धी दृष्टिकोण

यद्यपि बिहारी का आविर्भाव काल-सीमा की दृष्टि से भक्तिकाल में हुआ था, किन्तु काव्य प्रवृत्तियों की दृष्टि से उनकी रचना को रीति-काव्य में स्थान दिया जाता है, अत यह प्रश्न उठना स्वभाविक है कि रीति-तत्त्वों के प्रति उनका क्या दृष्टिकोण था? इस विषय पर विद्वानों में परस्पर मतभेद है, यहा इन चारो मतो पर ही क्रमश विचार किया जाता है—

(क) रीतिबद्ध—'रीतिबद्ध' से आशय ऐसे काव्य-रचयिताओ से है, जिन्होने काव्य शास्त्रीय लक्षणो का पूर्णत अनुगमन करते हुए उनके अनुसार या उनके उदाहरणो के रूप में अपनी काव्य-रचना की। इस दृष्टि से रीतिकाल के वे सब कवि जिन्होने पहले लक्षण या परिभाषा देकर उसके बाद उसके उदाहरण के रूप मे जो रचना प्रस्तुत की है—इस वर्ग के अन्तर्गत आते है। बिहारी ने अपनी सतसई मे विभिन्न तत्त्वो की परिभाषाए तो प्रस्तुत नही की फिर भी कतिपय विद्वानो के विचार से काव्य रचना के समय उनका ध्यान लक्षणो पर अवश्य था। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है—"बिहारी ने यद्यपि लक्षण-ग्रन्थ के रूप में अपनी सतसई नही लिखी है पर नख-शिख नायिका भेद, षटऋतु के अन्तर्गत उनके सब शृंगारी दोहे आ जाते है। दोहों को बनाते समय बिहारी का ध्यान लक्षणों पर अवश्य था। इसीलिए हमने बिहारी को रीतिकाल के फुटकल कवियो में न रख कर

---

६२. बिहारी सतसई वैज्ञानिक समीक्षा, पृ० ४६।

उक्त काल के प्रतिनिधि कवियों में ही रखा है।"[६३] आगे चलकर डा० राम सागर त्रिपाठी ने भी इसी मत का समर्थन करते हुए लिखा है—"बिहारी के प्रत्येक दोहे मे किसी न किसी लक्षण की छाप अवश्य दिखलाई देती है।[६४]

(ख) रीति-मुक्त—आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने स्पष्ट रूप मे तो बिहारी को रीति-मुक्त नही कहा किन्तु अप्रत्यक्ष में वे आचार्य शुक्ल के उपर्युक्त मत का खण्डन करते हुए लिखते हैं—"स्वयं बिहारी भी रीति-ग्रन्थो के अच्छे जानकार रहे होंगे, इसमें सन्देह नही, किन्तु उनके प्रत्येक दोहे मे किसी न किसी नायिका को खोज लेना यह नही सिद्ध करता कि वे रीति-ग्रन्थ लिख रहे थे।"[६५] डा० बच्चन सिंह ने भी इसी मत का अनुमोदन करते हुए तर्क दिया है कि यदि बिहारी सचमुच लक्षण-ग्रन्थ लिख रहे होते तो उनकी रचना मे नख-शिख एवं नायिका-भेद के सभी अंगों व भेदो का समावेश होता जबकि सतसई में नख-शिख की दृष्टि से "दांत, ग्रीवा, और हाथ जैसे प्रमुख अंग छूट गये हैं।"[६६]

(ग) रीति-सिद्ध—पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने बिहारी को रीति-सिद्ध कवि मानते हुए लिखा है—'शृंगार-काल में रीतिबद्ध और रीतिमुक्त कवियो से उन कवियो को भी पृथक करना होगा जो रीति सिद्ध है—जिन्होने रीति की सारी परम्परा सिद्ध कर ली थी अर्थात् रचनाए जिन्होने रीति की बन्धी परिपाटी के अनुकूल ही की हैं पर लक्षण ग्रन्थ प्रस्तुत न करके स्वतन्त्र रूप से अपनी रचनाए रची हैं। ये वस्तुत: मध्य मार्गी थे। रीति से बंधे भी थे और उससे कुछ स्वच्छन्द होकर भी चलते थे।[६७] बिहारी को भी उन्होने इन रीति-सिद्ध कवियों मे ही स्थान दिया है।

(घ) रीति-समन्वित—डा० गणपति चन्द्र गुप्त ने बिहारी के काव्य को 'रीति-समन्वित' मानते हुए प्रतिपादित किया है कि बिहारी-सतसई मे जहां लगभग ५७० दोहे रीतिबद्ध हैं वहां लगभग १४० दोहे ऐसे भी हैं जो स्वतन्त्र अनुभूति पर आधारित हें तथा जिन्हे विषय वस्तु की दृष्टि से इस प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है[६८]—

---

६३. हिन्दी साहित्य का इतिहास (शुक्ल), पृ० २४८।
६४. मुक्तक काव्य-परम्परा और बिहारी, पृ० १४०।
६५. हिन्दी साहित्य : उद्‌भव और विकास, पृ० ३२४।
६६ बिहारी : नव मूल्यांकन, पृ० ५५।
६७. हिन्दी साहित्य का अतीत, पृ० ५४८।
६८. बिहारी सतसई : वैज्ञानिक समीक्षा, पृ० ५४-५५।

(१)	प्रेम के स्वतन्त्र वर्णन	२० दोहे
(२)	भक्ति सम्बन्धी	५० ,,
(३)	नीति सम्बन्धी	४५ ,,
(४)	दर्शन-ज्योतिषादि विषयों पर	१७ ,,
(५)	महाराजा जयसिंह सम्बन्धी	७ ,,

उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर उनका निष्कर्ष है—"यद्यपि इन दोहों की संख्या डेढ़ सौ से अधिक नहीं है फिर भी इनकी सत्ता को बिलकुल अस्वीकार करते हुए बिहारी के समूचे काव्य को रीतिबद्ध कह देना अवैज्ञानिकता का सूचक होगा। ऐसी स्थिति में हमें मानना होगा कि बिहारी ने अपने काव्य में रीतिबद्ध और रीति-मुक्त काव्य की प्रवृत्तियों का समन्वय करने का प्रयास किया है तथा इस तथ्य को सूचित करने के लिए उनके काव्य को 'रीतिबद्ध' या 'रीति-मुक्त' न कहकर 'रीति-समन्वित' कहना उचित होगा।"[६६]

उपर्युक्त मतों पर पुनर्विचार

उपर्युक्त मतो पर पुनर्विचार करने से ज्ञात होता है कि जहां इन सभी में आंशिक सत्य है, वहां कोई न कोई त्रुटि भी है, अत इनमे से किसी को भी पूर्णत स्वीकार नही किया जा सकता। आचार्य शुक्ल का यह तर्क कि 'नख-शिख, नायिका-भेद, षटऋतु के अन्तर्गत उनके सब शृंगारी दोहे आ जाते हैं, इस तथ्य का परिचायक है कि शृंगार के अतिरिक्त शेष दोहे जिनकी संख्या लगभग डेढ़ सौ है, रीतिबद्ध नही कहे जा सकते। अत आचार्य शुक्ल का मत सम्पूर्ण सतसई पर लागू नही होता। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने शुक्ल जी के मत के प्रति शंका व्यक्त करते हुए भी स्पष्ट रूप मे यह नही कहा कि बिहारी रीति-मुक्त नही थे। इतना ही नही उन्होंने अपने इतिहास में रीति-मुक्त कवियो का विवेचन अलग से करते हुए भी उनमे बिहारी को स्थान नही दिया है जिससे स्पष्ट है कि वे इन्हे पूर्णत रीति-मुक्त भी नही मानते। डा० बच्चन सिंह ने बिहारी को रीति-मुक्त मानने के पक्ष मे जो तर्क दिया है कि सतसई मे दांत, ग्रीवा और हाथ जैसे प्रमुख अंग छूट गये हैं—यह भी भ्रामक है। वस्तुत. सतसई मे इन अंगो का भी निरूपण अलग-अलग दोहो में उपलब्ध है, देखिये—

(अ) दांत—

नैंक हंसौं ही बानि तजि, लख्यौ परतु मुहुं नीठि।
चौका-चमकनि चौंध मैं, परति चौंधि सी डीठि॥[७०]

---

६६ बिहारी-सतसई · वै० समीक्षा पृ० स० ५५।
७०. बिहारी रत्नाकर, दो० स० १००।

(आ) ग्रीवा—

खरी लसति गोरैं गरैं धंसति पान की पीक।
मनौ गुलीबन्द-लाल की, लाल, लाल दुति-लीक ॥[७१]

(ए) हाथ—

नख रुचि चूरनु डारि कै, ठगि लगाइ निज साथ।
रह्यो राखि हठि लै गए हथाहथी मनु हाथ ॥[७२]

अस्तु, डा० बच्चन सिंह का उपर्युक्त तर्क भी तथ्य-विरोधी सिद्ध हो जाता है।

आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने बिहारी को रीति-सिद्ध माना है। किन्तु इससे भी उनकी स्थिति स्पष्ट नहीं होती। 'रीति-सिद्ध' के अन्तर्गत हम तुलसी जैसे उन सभी कवियो को स्थान दे सकते हैं जो कि सुपठित, सुशिक्षित एवं काव्य-शास्त्र मे पारंगत हैं, अत. इसमे बिहारी का यह वैशिष्ट्य स्पष्ट नही होता कि उन्होंने जानबूझ कर रीति-तत्त्वो का प्रयोग अपने काव्य में किया था। इसी प्रकार डा० गुप्त का यह मत कि उनका काव्य 'रीति-समन्वित' था, उनके व्यक्तित्व पर लागू नही होता, अर्थात् हम यह नही कह सकते कि 'बिहारी रीति समन्वित थे।' ऐसी स्थिति में हमे इसका कोई और विकल्प खोजना होगा। हमारे विचार में उपर्युक्त विवेचन के आधार पर निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं—

(१) बिहारी का रीति-शास्त्र का बहुत अच्छा ज्ञान था।
(२) बिहारी ने लगभग तीन-चौथाई दोहो की रचना के समय रीति-तत्त्वों को ध्यान मे रखा है।
(३) बिहारी सतसई के लगभग एक चौथाई दोहे रीति-तत्त्वो या उनके लक्षणो पर आधारित न होकर कवि की स्वतन्त्र अनुभूति पर आधारित हैं। ऐसी स्थिति मे हम क्यो न बिहारी को 'रीति-प्रभावित' कहें? हमारे विचार से उनके अधिकांश दोहे रीति-तत्त्वों या शास्त्रीय लक्षणों से प्रभावित हैं, भले ही कुछ दोहे इसके अपवाद हो, अतः उन्हें तथा उनके काव्य को 'रीति-प्रभावित' मान लिया जाय तो अनुचित न होगा।

काव्य-वस्तु के प्रति दृष्टिकोण

काव्य की विषयवस्तु के प्रति भी बिहारी का दृष्टिकोण यथार्थवादी था। आदर्शवादी कवि तुलसी के विपरीत वे कविता को केवल अलौकिक व्यक्तियो के

७१. वही, दो० सं० ४४०।
७२. वही, दो० सं० ५५०।

ही गुणगान का माध्यम नही मानते थे, अपितु वे 'प्रकृति-जन' ही नहीं, अधम कोटि के लोगो को भी उसमें स्थान देने में कोई आपत्ति नही समझते थे। इसीलिए उन्होंने सज्जन, दुष्ट, प्रेमी, व्यभिचारी, एवं चरित्रहीन पुरुषों तथा स्वकीया, परकीया कुलटा स्त्रियो, गाँव के लोगो व शहर के रसिक जनों, ढोंगी वैद्यों व ज्योतिषियों, पाखण्डी कथावाचकों, रूप लोभी भिखारियों, कलुषित मनोवृत्ति के देवर-भाभियों, पक्षपाती अधिकारियो, पराक्रमी व दानी नरेशों तथा मुगलों के अधीन स्वधर्मियो के विरुद्ध लड़ने वाले हिन्दू नरेशो आदि सभी प्रकार के व्यक्तियो व वर्गों को उन्होंने काव्य में स्थान दिया है। इस दृष्टि से कहा जा सकता है कि बिहारी का काव्य-वस्तु के प्रति पर्याप्त व्यापक दृष्टिकोण था, वे उस में सभी प्रकार के विषयो—धर्म, दर्शन, ज्योतिष, वैद्यक, ज्ञान-विज्ञान—को स्थान देने के पक्षपाती थे। इतना अवश्य है कि वे अधिकाश विषयों को शृंगार रस के रंग मे रंग कर ही प्रस्तुत करना उचित समझते थे। अतः एक आलोचक के शब्दों मे कहा जा सकता है—"बिहारी के काव्य की प्रमुख प्रवृत्ति शृंगारिकता की ही है, अन्य प्रवृत्तियो के मूल मे भी इसी की प्रेरणा है। चाहे वे आराध्य की भक्ति कर रहे हो या दर्शन और ज्योतिष के सिद्धान्त समझा रहे हो अथवा नीति के उपदेश दे रहे हों—बिहारी की दृष्टि प्रत्येक समय नारी के अंग विषयों पर ही रहती है। वस्तुत नारी का नख-शिख बिहारी के लिए एक ऐसा कल्पवृक्ष है जिससे उन्हें धर्म, ज्योतिष, दर्शन, नीति, शृंगार आदि सब कुछ प्राप्त हो जाता है।"[७३] वस्तुत. आनन्दवर्द्धन की भांति बिहारी का भी इस बात मे विश्वास है कि कवि शृंगारी हो तो वह ससार की हर वस्तु को सौन्दर्य में परिणत कर सकता है।[७४]

काव्य-शैली के प्रति दृष्टिकोण

बिहारी ने अपनी सतसई मे विभिन्न प्रकार की शैलियो का प्रयोग किया है। कही उन्होने अत्यन्त सरल एवं स्वाभाविक शब्दावली के माध्यम से भाव-व्यजना की है तो कहीं अनुप्रास, चमत्कार एवं वैचित्र्य का आश्रय ग्रहण किया है। समग्र रूप मे देखा जाय तो उनमें चमत्कार की ही प्रधानता दृष्टिगोचर होगी। इसका कारण भी कदाचित् यही बताया जा सकता है कि बिहारी अपने युग को प्रवृत्तियो एवं लोक-रुचि को ध्यान मे रखकर चलने वाले कवि थे, उस युग के दरबारी वातावरण मे भी फारसी के प्रभाव के कारण चमत्कार का ही बोलबाला था, अतः

---

७३. हिन्दी काव्य में शृंगार परम्परा और बिहारी, द्वितीय खंड, पृ० १२।

७४. शृंगारी चेत्कविः काव्ये जात रसमयं जगत्।
स एव वीतरागश्चेन्नीरस सर्वमेव तत्॥
—हिन्दी ध्वन्यालोक, पृ० स० ४२२।

उन्होने अधिकांश दोहों मे अलंकार-युक्त एवं चमत्कारपूर्ण शैली का ही प्रयोग किया है, इसी लिए उसमें अलंकार, रीति, वक्रोक्ति एवं ध्वनि के प्राय. सभी उदाहरण उपलब्ध हो जाते हैं। ऐसी स्थिति मे कहा जा सकता है कि शैली के सम्बन्ध में बिहारी का दृष्टिकोण रीतिवादी (Formalist) था अर्थात् वे केवल कथ्य की ही विशेपता मे विश्वास नही करते थे, अपितु कथन-शैली के वैशिष्ट्य पर भी विशेप बल देते थे। उनके इस दृष्टिकोण के कारण उनके काव्य में अनेक स्थलों पर अस्वाभाविकता, ऊहात्मकता, अस्पष्टता एवं क्लिष्टता का दोप भी आ गया है।

समग्र रूप मे कहा जा सकता है कि बिहारी का कला और साहित्य के प्रति यथार्थपरक, भोगपरक, वैविध्यपरक, लोक-रुचि परक एवं रीतिपरक दृष्टिकोण था जो उनकी युगीन परिस्थितियो एवं वातावरण के सन्दर्भ में संगत प्रतीत होता है।

९ उपसंहार

अब तक हमने विगत आठ अध्यायो में विहारी के जीवन-चरित, व्यक्तित्व एव जीवन-दर्शन पर क्रमश. विचार करते हुए उनके सम्बन्ध मे अनेक नूतन निष्कर्ष प्राप्त किए हैं जिन्हें यहा सक्षेप मे इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है—

(क) मध्ययुग मे विहारीदास और 'विहारी लाल' नाम के दो कवि हुए हैं। *सुप्रसिद्ध विहारी-सतसई के रचयिता कवि का नाम 'विहारी दास था'* जबकि विहारी लाल एक टीकाकार थे जो सुप्रसिद्ध विहारी दास के एक शताब्दी वाद हुए थे पर भ्रान्तिवश 'विहारी लाल' को ही विहारी दास मान लिया गया।

(ख) सतसईकार विहारी के पिता का नाम केशवदास था। विद्वानो मे विवाद रहा है कि केशव प्रसिद्ध कवि केशव थे या अन्य। हमारे अध्ययन के अनुसार इसी निष्कर्ष की पुष्टि होती है कि वे प्रसिद्ध कवि केशवदास (रामचन्द्रिका के रचयिता) के ही पुत्र थे।

(ग) *विहारी के व्यक्तित्व के बौद्धिक पक्ष का अध्ययन* करते हुए हमने विहारी की कल्पनाशक्ति, स्मरणशक्ति, तर्कशक्ति, ज्ञान एव ग्रहण शक्ति पर विचार किया है। सौन्दर्योन्मुखी कलात्मक कल्पनाशक्ति के साहित्य-सर्जन मे मुख्यत दो कार्य होते हैं—(१) नूतन विषयों का चित्रण तथा विषयवस्तु को आकर्षक रूप प्रदान करना। हम देखते हैं कि विहारी की कल्पना-शक्ति ने काव्य के क्षेत्र में दोनों ही कार्य सफलतापूर्वक सपादित किये है। विहारी में नूतन प्रसंगो की उद्भावना एव उनके प्रस्तुतीकरण की अद्भुत शक्ति थी। हा, यह अलग बात है कि अनुभूतियो के अभाव मे एव चमत्कार-प्रदर्शन की लालसा के कारण उनके अनेक दोहे हास्यास्पद वन गये हैं।

कल्पना-शक्ति स्मृति पर आश्रित होती है और हम देखते हैं कि विहारी की कल्पनाशक्ति अत्यधिक विकसित थी अतः यह अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है कि विहारी की स्मृति भी तीव्र थी।

मनोवैज्ञानिक तर्क शक्ति के तीन भेद मानते हैं—आगमन, उपमान और निगमन। विहारी में उपमान तर्क शक्ति सर्वाधिक विकसित थी, किन्तु साथ ही आगमन व निगमन तर्क शक्ति का भी अभाव न था।

विहारी को विभिन्न विषयों का व्यापक ज्ञान था। उन्हें काव्यशास्त्र में ही नहीं, अपितु ज्योतिष, आयुर्वेद एव कामशास्त्र मे भी विशेष दक्षता प्राप्त थी तथा इसका उपयोग उन्होंने विहारी-सतसई मे स्थान-स्थान पर किया है। विहारी-सतसई के अध्ययन से यह वात भी स्पष्ट है कि विहारी ने पौराणिक ग्रन्थों का

भी गंभीर अध्ययन किया था तथा धर्म, दर्शन, राजनीति एवं विज्ञान सम्बन्धी विषयों का भी अच्छा ज्ञान था।

बिहारी ने विभिन्न भाषाओं के शब्द-रत्नों को चुन-चुनकर सतसई रूपी गहने में जड़ने का सफल प्रयास किया जिससे एक ओर सतसई के सौन्दर्य में चार चांद लग गये हैं वहां दूसरी ओर यह बिहारी की तीव्र ग्रहण-शक्ति का भी परिचायक है। सतसई के अध्ययन के उपरान्त हम देखते हैं कि बिहारी सतसई में संस्कृत के तत्सम परिनिष्ठत शब्दों की सख्या सर्वाधिक है।

(घ) मैक्डूगल महोदय चौदह प्रकार की सहज प्रवृत्तियां मानते हैं। बिहारी में काम की प्रवृत्ति सर्वप्रमुख थी किन्तु उनकी पत्नी के देहान्त के पश्चात् उनमें भक्तिभावना की प्रवृत्ति प्रधान हो गई है। इसके अतिरिक्त सतसई के अनेक दोहों में बिहारी की हास्य एवं व्यग्य की प्रवृत्ति का भी परिचय मिलता है।

(ङ) बिहारी के नैतिक एव क्रियात्मक पक्ष का अध्ययन करते हुए हमने सर्वप्रथम बिहारी की प्रकृति एवं स्वभाव पर विचार किया है जिससे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि बिहारी गम्भीर एवं शान्त प्रकृति के व्यक्ति थे तथा स्वभाव से प्रफुल्ल थे। चारित्रिक गुणों की दृष्टि से विचार करने पर यह स्पष्ट होता है कि बिहारी उदार, विनम्र, एव सहिष्णु व्यक्ति थे। वे स्वाभिमानी होने के साथ-साथ स्पष्टवादी भी थे तथा उनका हृदय निष्कपट था। वे विनोद प्रिय भी कम न थे।

क्रियात्मक या व्यावहारिक प्रवृत्तियों की दृष्टि से बिहारी नागरिक रुचि के व्यक्ति थे। त्यौहारो मे उन्हें होली और ऋतुओ मे शरद ऋतु से विशेष लगाव था। उनका प्रिय जीव-जन्तु—भ्रमर, प्रिय पुष्प—गुलाब और प्रिय रंग—श्वेत था। नायिका के परिधानो मे उन्हे साडी विशेष रुचिकर थी तथा आभूषणों में उन्हें माला सर्वाधिक प्रिय थी। पतंगबाजी, मद्यपान, तम्बाकू पीना आदि उनके प्रिय शौक थे।

(च) बिहारी का व्यक्तित्व बहिर्मुखी था जिसमे तर्क और भावना का उचित समन्वय था तथा कल्पना की अपेक्षाकृत अधिकता। यही कारण है कि युंग की शब्दावली मे किंचित् परिवर्तन करते हुए हमने बिहारी के व्यक्तित्व को 'बहिर्मुखी कल्पनाशील' कहा है।

(छ) बिहारी धर्म, दर्शन, ज्योतिष, कामशास्त्र, वैद्यक, गणित आदि के विभिन्न विषयों मे रुचि प्रदर्शित करते हुए इनका समन्वय शृंगार के अन्तर्गत कर देते है अत- हम कह सकते हैं कि बिहारी का व्यक्तित्व प्रारम्भ मे बहुमुखी होते हुए भी एकोन्मुख था तथा यह संगठित व्यक्तित्व का परिचायक है। पत्नी की मृत्यु से उन्हें गहरा आघात लगा और वे शृंगार से भक्ति एवं वैराग्य की ओर अग्रसर होगए किन्तु ऐसा नही कहा जा सक्ता कि उनका व्यक्तित्व विघटित हो गया अपितु यही कहा जा सक्ता है कि उन्होने नयी परिस्थितियो के अनुरूप अपने व्यक्तित्व और जीवन-दर्शन को एक नई दिशा दे दी।

९ | उपसंहार

अब तक हमने विगत आठ अध्यायो में बिहारी के जीवन-चरित, व्यक्तित्व एवं जीवन-दर्शन पर क्रमशः विचार करते हुए उनके सम्बन्ध मे अनेक नूतन निष्कर्ष प्राप्त किए हैं जिन्हें यहा सक्षेप में इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है—

(क) मध्ययुग मे बिहारीदास और 'बिहारी लाल' नाम के दो कवि हुए हैं। सुप्रसिद्ध बिहारी-सतसई के रचयिता कवि का नाम 'बिहारी दास था' जबकि बिहारी लाल एक टीकाकार थे जो सुप्रसिद्ध बिहारी दास के एक शताब्दी बाद हुए थे पर भ्रान्तिवश 'बिहारी लाल' को ही बिहारी दास मान लिया गया।

(ख) सतसईकार बिहारी के पिता का नाम केशवदास था। विद्वानो मे विवाद रहा है कि केशव प्रसिद्ध कवि केशव थे या अन्य। हमारे अध्ययन के अनुसार इसी निष्कर्ष की पुष्टि होती है कि वे प्रसिद्ध कवि केशवदास (रामचन्द्रिका के रचयिता) के ही पुत्र थे।

(ग) बिहारी के व्यक्तित्व के बौद्धिक पक्ष का अध्ययन करते हुए हमने बिहारी की कल्पनाशक्ति, स्मरणशक्ति, तर्कशक्ति, ज्ञान एवं ग्रहण शक्ति पर विचार किया है। सौन्दर्योन्मुखी कलात्मक कल्पनाशक्ति के साहित्य-सर्जन मे मुख्यत. दो कार्य होते हैं—(१) नूतन विषयो का चित्रण तथा विषयवस्तु को आकर्षक रूप प्रदान करना। हम देखते हैं कि बिहारी की कल्पना-शक्ति ने काव्य के क्षेत्र में दोनों ही कार्य सफलतापूर्वक संपादित किये हैं। बिहारी में नूतन प्रसंगो की उद्भावना एवं उनके प्रस्तुतीकरण की अद्भुत शक्ति थी। हां, यह अलग बात है कि अनुभूतियो के अभाव मे एव चमत्कार-प्रदर्शन की लालसा के कारण उनके अनेक दोहे हास्यास्पद बन गये हैं।

कल्पना-शक्ति स्मृति पर आश्रित होती है और हम देखते हैं कि बिहारी की कल्पनाशक्ति अत्यधिक विकसित थी अतः यह अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है कि बिहारी की स्मृति भी तीव्र थी।

मनोवैज्ञानिक तर्क शक्ति के तीन भेद मानते हैं—आगमन, उपमान और निगमन। बिहारी में उपमान तर्क शक्ति सर्वाधिक विकसित थी, किन्तु साथ ही आगमन व निगमन तर्क शक्ति का भी अभाव न था।

बिहारी को विभिन्न विषयों का व्यापक ज्ञान था। उन्हें काव्यशास्त्र में ही नहीं, अपितु ज्योतिष, आयुर्वेद एवं कामशास्त्र मे भी विशेष दक्षता प्राप्त थी तथा इनका उपयोग उन्होंने बिहारी-सतसई में स्थान-स्थान पर किया है। बिहारी-सतसई के अध्ययन से यह बात भी स्पष्ट है कि बिहारी ने पौराणिक ग्रन्थों का

भी गंभीर अध्ययन किया था तथा धर्म, दर्शन, राजनीति एवं विज्ञान सम्बन्धी विषयों का भी अच्छा ज्ञान था।

विहारी ने विभिन्न भाषाओं के शब्द-रत्नों को चुन-चुनकर सतसई रूपी गहने में जड़ने का सफल प्रयास किया जिससे एक ओर सतसई के सौन्दर्य में चार चाँद लग गये हैं वहां दूसरी ओर यह विहारी की तीव्र ग्रहण-शक्ति का भी परिचायक है। सतसई के अध्ययन के उपरान्त हम देखते हैं कि विहारी सतसई में संस्कृत के तत्सम परिनिष्ठित शब्दों की संख्या सर्वाधिक है।

(घ) मैक्डूगल महोदय चौदह प्रकार की सहज प्रवृत्तियां मानते हैं। विहारी में काम की प्रवृत्ति सर्वप्रमुख थी किन्तु उनकी पत्नी के देहान्त के पश्चात् उनमें भक्तिभावना की प्रवृत्ति प्रधान हो गई है। इसके अतिरिक्त सतसई के अनेक दोहों में विहारी की हास्य एवं व्यंग्य की प्रवृत्ति का भी परिचय मिलता है।

(ङ) विहारी के नैतिक एवं क्रियात्मक पक्ष का अध्ययन करते हुए हमने सर्वप्रथम विहारी की प्रकृति एवं स्वभाव पर विचार किया है जिससे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि विहारी गम्भीर एवं शान्त प्रकृति के व्यक्ति थे तथा स्वभाव से प्रफुल्ल थे। चारित्रिक गुणों की दृष्टि से विचार करने पर यह स्पष्ट होता है कि विहारी उदार, विनम्र, एवं सहिष्णु व्यक्ति थे। वे स्वाभिमानी होने के साथ-साथ स्पष्टवादी भी थे तथा उनका हृदय निष्कपट था। वे विनोद प्रिय भी कम न थे।

क्रियात्मक या व्यावहारिक प्रवृत्तियों की दृष्टि से विहारी नागरिक रुचि के व्यक्ति थे। त्योहारों में उन्हें होली और ऋतुओं में शरद ऋतु से विशेष लगाव था। उनका प्रिय जीव-जन्तु—भ्रमर, प्रिय पुष्प—गुलाब और प्रिय रंग—श्वेत था। नायिका के परिधानों में उन्हें साड़ी विशेष रुचिकर थी तथा आभूषणों में उन्हें माला सर्वाधिक प्रिय थी। पतंगबाजी, मद्यपान, तम्बाकू पीना आदि उनके प्रिय शौक थे।

(च) विहारी का व्यक्तित्व बहिर्मुखी था जिसमें तर्क और भावना का उचित समन्वय था तथा कल्पना की अपेक्षाकृत अधिकता। यही कारण है कि युंग की शब्दावली में किंचित् परिवर्तन करते हुए हमने विहारी के व्यक्तित्व को 'बहिर्मुखी कल्पनाशील' कहा है।

(छ) विहारी धर्म, दर्शन, ज्योतिष, कामशास्त्र, वैद्यक, गणित आदि के विभिन्न विषयों में रुचि प्रदर्शित करते हुए इनका समन्वय शृंगार के अन्तर्गत कर देते हैं अतः हम कह सकते हैं कि विहारी का व्यक्तित्व प्रारम्भ में बहुमुखी होते हुए भी एकोन्मुख था तथा यह संगठित व्यक्तित्व का परिचायक है। पत्नी की मृत्यु से उन्हें गहरा आघात लगा और वे शृंगार से भक्ति एवं वैराग्य की ओर अग्रसर होगए किन्तु ऐसा नहीं कहा जा सकता कि उनका व्यक्तित्व विघटित हो गया अपितु यही कहा जा सकता है कि उन्होंने नयी परिस्थितियों के अनुरूप अपने व्यक्तित्व और जीवन-दर्शन को एक नई दिशा दे दी।

(ज) बिहारी के जीवन का परम लक्ष्य प्रारम्भ में प्रेममय जीवन था। प्रिया के सान्निध्य के समक्ष वे स्वर्ग और मोक्ष या धन-दौलत को भी तुच्छ मानते थे। किन्तु पत्नी के देहान्त के पश्चात् उन्हें जीवन से वैराग्य हो गया तथा वे स्वर्ग एवं मोक्ष की कामना करने लगे।

(झ) *बिहारी ईश्वर के प्रति आस्थावान थे।* उन्हें हरिदासी-सम्प्रदाय में दीक्षित माना जाता है किन्तु उनमें साम्प्रदायिक कट्टरता का अभाव था। वे धर्म के क्षेत्र में बाह्याडम्बरों को निरर्थक मानते थे तथा विभिन्न सम्प्रदायों के प्रति उनका दृष्टिकोण समन्वयवादी था।

(ञ) बिहारी प्रेम के क्षेत्र में सामाजिक मर्यादाओं एवं नैतिक मूल्यों को विशेष महत्व नहीं देते थे। रसिकता के आगे वे नैतिकता को गौण समझते थे। अतः निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि बिहारी यथार्थवादी थे।

(ट) राजनीति के क्षेत्र में बिहारी द्वैध शासन-प्रणाली को घातक मानते थे तथा परिस्थितियों के अनुसार कूटनीति, हिंसा व युद्ध के समर्थक थे किन्तु हिन्दू नरेशों द्वारा हिन्दुओं के विरुद्ध किये जाने वाले युद्धों को उचित नहीं मानते थे।

(ठ) लोकनीति एवं लोक व्यवहार के क्षेत्र में बिहारी का विश्वास था कि *प्रत्येक मनुष्य अपनी मूल प्रकृति के अनुसार ही कार्य करता है तथा मनुष्यता की* कसौटी उसके उच्च गुण हैं। इसी प्रकार वे सज्जनता की कसौटी विनम्रता को मानते थे। दुष्ट व्यक्तियों को वे अविश्वसनीय मानते हुए वे उनके प्रति 'शठे शाठ्य समाचरेत्' की नीति का पालन ठीक समझते थे। वे अर्थ या धन को जीवन के लिए आवश्यक मानते हुए भी कृपणता, असन्तोष और गर्व को अनुचित समझते थे।

(ड) कला और साहित्य के प्रति भी बिहारी का दृष्टिकोण यथार्थवादी था इसीलिए वे संगीत और काव्य को मनोविनोद और भोग-विलास के साधन के रूप में ही स्वीकार करते हैं। साहित्य के क्षेत्र में एक मत या सिद्धान्त के कट्टर अनुयायी न थे अपितु वे लोक रुचि के अनुसार सभी सिद्धान्तों को स्वीकार करते थे। पूर्णतः रीतिवादी न होते हुए भी उन्होंने अपने काव्य मे रीति तत्त्वों का समन्वय किया है। अपने युग की लोक रुचि के अनुसार ही उन्होंने अपनी सतसई मे शृंगार, भक्ति, नीति धर्म, दर्शन आदि से सम्बन्धित विषयों को स्थान दिया है। काव्य शैली के सम्बन्ध में उनका दृष्टिकोण चमत्कारवादी था। इस प्रकार समग्र रूप मे कहा जा सकता है कि कला और साहित्य के प्रति बिहारी का दृष्टिकोण यथार्थ-परक, भोगपरक, लोकरुचिपरक एवं रीतिपरक था।

इस प्रकार उपर्युक्त निष्कर्षों को ध्यान मे रखते हुए कहा जा सकता है कि बिहारी का व्यक्तित्व एवं जीवन-दर्शन एक मध्यकालीन दरबारी कवि के अनुरूप था। वे जिस युग मे हुए उसमे न तो घोर आदर्शवादिता ही संभव थी न ही पूर्ण स्पष्टवादिता। वे परम्परा और लोकरुचि का ध्यान रखते हुए मध्यमार्ग पर चलने वाले समन्वयवादी या संग्रहवादी अथवा समझौतावादी कवि थे जिन्हे दूसरे शब्दों मे 'यथार्थवादी' भी कहा जा सकता है।

सहायक ग्रन्थ-सूची

(क) हिन्दी-ग्रन्थ

क्रम सं०	पुस्तक का नाम	लेखक/सम्पादक	संस्करण
(१)	कल्पना और छायावाद	केदार नाथ सिंह	प्रथम
(२)	कविवर बिहारी	जगन्नाथ दास 'रत्नाकर'	प्रथम
(३)	कविवर बिहारी लाल और उनका युग	डा० रणधीर सिन्हा	प्रथम
(४)	केशव-काव्य : मनोवैज्ञानिक विवेचन	डा० धर्मस्वरूप गुप्त	प्रथम
(५)	काव्य-कौतुक	भट्टतौत	प्रथम
(६)	चिन्तामणि (प्रथम भाग)	रामचन्द्र शुक्ल	प्रथम
(७)	दर्शन का प्रयोजन	डा० भगवानदास	प्रथम
(८)	देव और बिहारी	श्रीकृष्ण बिहारी मिश्र	२००३ सं०
(९)	पद्मावत	डा० वासुदेवशरण अग्रवाल	
(१०)	पु० भारतीय दर्शन	वाचस्पति गैरोला	प्रथम
(११)	प्रारम्भिक शिक्षा मनोविज्ञान	डा० साहू प्रसाद चौबे	प्रथम
(१२)	बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' : व्यक्तित्व एवं काव्य	डा० लक्ष्मी नारायण	प्रथम
(१३)	वाल्मीकि और तुलसी : साहित्यिक-मूल्यांकन	डा० रामप्रकाश अग्रवाल	प्रथम
(१४)	बिहारी	विश्वनाथ प्रसाद मिश्र	प्रथम
(१५)	बिहारी और देव	भगवानदीन	प्रथम
(१६)	बिहारी का काव्य-लालित्य	डा० रमाशंकर तिवारी	प्रथम
(१७)	बिहारी की वाग्विभूति	श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र	प्रथम
(१८)	बिहारी की सतसई	सं० जार्ज ग्रियर्सन	प्रथम
(१९)	बिहारी नवनीत	रवीन्द्र कुमार	प्रथम

(२०)	बिहारी का नया मूल्यांकन	डा० बच्चन सिंह	प्रथम
(२१)	बिहारी-बिहार	पं० अम्बिकादत्त व्यास	प्रथम
(२२)	बिहारी-रत्नाकर	जगन्नाथ दास रत्नाकर	तृतीय
(२३)	बिहारी सतसई की भूमिका	पद्मसिंह शर्मा	प्रथम
(२४)	बिहारी सतसई की सरल टीका	लाला भगवान दीन	प्रथम
(२५)	बिहारी सतसई वैज्ञानिक समीक्षा	डा० गणपति चन्द्र गुप्त	प्रथम
(२६)	भारतीय दर्शन	डा० राधाकृष्णन	प्रथम
(२७)	भावार्थ प्रकाशिका	पं० ज्वाला प्रसाद मिश्र	प्रथम
(२८)	मनोविज्ञान	डा० यदुनाथ सिन्हा	चतुर्थ
(२९)	मनोविश्लेषण और मानसिक क्रियाएँ	डा० पद्मा अग्रवाल	द्वितीय
(३०)	मिश्रबन्धु विनोद	मिश्रबन्धु	प्रथम
(३१)	मुक्तक काव्य-परम्परा और बिहारी	डा० रामसागर त्रिपाठी	द्वितीय
(३२)	रस मीमांसा	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल	प्रथम
(३३)	रससिद्धान्त का पुनर्विवेचन	डा० गणपति चन्द्र गुप्त	प्रथम
(३४)	रामचन्द्रिका	केशव दास	प्रथम
(३५)	रीतिकाव्य की भूमिका	डा० नगेन्द्र	प्रथम
(३६)	सेलेक्शन फ्राम हिन्दी लिटरेचर	लाला सीता राम	प्रथम
(३७)	साधना और संघर्ष	डा० रणवीर रांग्रा	प्रथम
(३८)	सामान्य मनोविज्ञान	रामबाबू गुप्त	द्वितीय
(३९)	साहित्य एवं शोध : कुछ समस्याएँ	डा० देवराज उपाध्याय	प्रथम
(४०)	साहित्यिक निबन्ध	डा० गणपति चन्द्र गुप्त	पंचम
(४१)	साहित्य का वैज्ञानिक विवेचन	डा० गणपति चन्द्र गुप्त	प्रथम
(४२)	साहित्य की शैली	डा० गणपति चन्द्र गुप्त	प्रथम
(४३)	साहित्य-विज्ञान	डा० गणपति चन्द्र गुप्त	प्रथम
(४४)	हिन्दी काव्य मे शृंगार परपरा और महाकवि बिहारी	डा० गणपति चन्द्र गुप्त	प्रथम
(४५)	हिन्दी ध्वन्यालोक	स० डा० नगेन्द्र	१९५५ ई०
(४६)	हिन्दी नवरत्न		द्वितीय
(४७)	हिन्दी शब्द-सागर	स० करुणापति त्रिपाठी	प्रथम
(४८)	हिन्दी साहित्य, द्वितीय खण्ड	स० डा० धीरेन्द्र वर्मा	द्वितीय
(४९)	हिन्दी साहित्य	डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी	प्रथम
(५०)	हिन्दी साहित्य : उद्भव और विकास	डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी	प्रथम
(५१)	हिन्दी साहित्य का अतीत	विश्वनाथ प्रसाद मिश्र	प्रथम

(५२) हिन्दी साहित्य का इतिहास	रामचन्द्र शुक्ल	पंचम
(५३) हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास (डा० जार्ज ग्रियर्सन के ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद)	अनु० किशोरी लाल	द्वितीय
(५४) हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास, षष्ठ भाग	सं० डा० नगेन्द्र	प्रथम
(५५) हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास	डा० गणपति चन्द्र गुप्त	प्रथम
(५६) हिन्दुई साहित्य का इतिहास (तासी के ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद)	अनु० डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय	प्रथम

(ख) अंग्रेजी-ग्रन्थ

1. A Psychological Interpretation	W. G. Allport	1956
2. An Introduction to the Personality study	R. B. Cattall	1950
3. An Introduction to the Social-Psychology	W. Mc. Dougall	
4. An outline of Psychology	—do—	First
5. An outline of Sciology	R. B. Gupta	1949
6. Emotions in Man & Animal	Paul Thomas young,	First
7. Encylopaedia of Psychology	Ed. Philip Lawrence	IInd, 1947
8. Introduction to Philosophy	Max Rosenberg	First
9. Modern Education & Psychology	B. N. Jha	First
10. Modern Psychology & Education	Marry Stuart	1946
11. Psychology	C. W. Valentine	1952
12. Psychology	Karn	1952
13. Psychology	R. S. Woodworth	1955
14. Psychological Studies in Ras	Dr. Rakesh Gupta	Ed. 1952
15. Psychological Types	C. G. Jung	First
16. Style	F. L. Lucas	1953
17. The Appreciation of Poetry	E. G. Moll	1955
18. The Development of Personality	C. G. Jung	1933
		First

(२०) बिहारी का नया मूल्यांकन	डा० बच्चन सिंह	प्रथम
(२१) बिहारी-विहार	पं० अम्बिकादत्त व्यास	प्रथम
(२२) बिहारी-रत्नाकर	जगन्नाथ दास रत्नाकर	तृतीय
(२३) बिहारी सतसई की भूमिका	पद्मसिंह शर्मा	प्रथम
(२४) बिहारी सतसई की सरल टीका	लाला भगवान दीन	प्रथम
(२५) बिहारी सतसई . वैज्ञानिक समीक्षा	डा० गणपति चन्द्र गुप्त	प्रथम
(२६) भारतीय दर्शन	डा० राधाकृष्णन	प्रथम
(२७) भावार्थ प्रकाशिका	पं० ज्वाला प्रसाद मिश्र	प्रथम
(२८) मनोविज्ञान	डा० यदुनाथ सिन्हा	चतुर्थ
(२९) मनोविश्लेषण और मानसिक क्रियाएँ	डा० पद्मा अग्रवाल	द्वितीय
(३०) मिश्रबन्धु विनोद	मिश्रबन्धु	प्रथम
(३१) मुक्तक काव्य-परम्परा और बिहारी	डा० रामसागर त्रिपाठी	द्वितीय
(३२) रस मीमांसा	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल	प्रथम
(३३) रससिद्धान्त का पुनर्विवेचन	डा० गणपति चन्द्र गुप्त	प्रथम
(३४) रामचन्द्रिका	केशव दास	प्रथम
(३५) रीतिकाव्य की भूमिका	डा० नगेन्द्र	प्रथम
(३६) सेलेक्शन फ्राम हिन्दी लिटरेचर	लाला सीता राम	प्रथम
(३७) साधना और संघर्ष	डा० रणवीर राग्रा	प्रथम
(३८) सामान्य मनोविज्ञान	रामबाबू गुप्त	द्वितीय
(३९) साहित्य एव शोध कुछ समस्याएँ	डा० देवराज उपाध्याय	प्रथम
(४०) साहित्यिक निबन्ध	डा० गणपति चन्द्र गुप्त	पचम
(४१) साहित्य का वैज्ञानिक विवेचन	डा० गणपति चन्द्र गुप्त	प्रथम
(४२) साहित्य की शैली	डा० गणपति चन्द्र गुप्त	प्रथम
(४३) साहित्य-विज्ञान	डा० गणपति चन्द्र गुप्त	प्रथम
(४४) हिन्दी काव्य मे शृंगार परपरा और महाकवि बिहारी	डा० गणपति चन्द्र गुप्त	प्रथम
(४५) हिन्दी ध्वन्यालोक	स० डा० नगेन्द्र	१९५५ ई०
(४६) हिन्दी नवरत्न		द्वितीय
(४७) हिन्दी शब्द-सागर	सं० करुणपति त्रिपाठी	प्रथम
(४८) हिन्दी साहित्य, द्वितीय खण्ड	स० डा० धीरेन्द्र वर्मा	द्वितीय
(४९) हिन्दी साहित्य	डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी	प्रथम
(५०) हिन्दी साहित्य . उद्भव और विकास	डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी	प्रथम
(५१) हिन्दी साहित्य का अतीत	विश्वनाथ प्रसाद मिश्र	प्रथम

(५२) हिन्दी साहित्य का इतिहास	रामचन्द्र शुक्ल	पंचम
(५३) हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास (डा० जार्ज ग्रियर्सन के ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद)	अनु० किशोरी लाल	द्वितीय
(५४) हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास, षष्ठ भाग	सं० डा० नगेन्द्र	प्रथम
(५५) हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास	डा० गणपति चन्द्र गुप्त	प्रथम
(५६) हिन्दुई साहित्य का इतिहास (तासी के ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद)	अनु० डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय	प्रथम

(ख) अंग्रेजी-ग्रन्थ

1. A Psychological Interpretation	W. G. Allport	1956
2. An Introduction to the Personality study	R. B. Cattall	1950
3. An Introduction to the Social-Psychology	W. Mc. Dougall	First
4. An outline of Psychology	—do—	1949
5. An outline of Sociology	R. B. Gupta	First
6. Emotions in Man & Animal	Paul Thomas young,	IInd, 1947
7. Encylopaedia of Psychology	Ed. Philip Lawrence	First
8. Introduction to Philosophy	Max Rosenberg	First
9. Modern Education & Psychology	B. N. Jha	1946
10. Modern Psychology & Education	Marry Stuart	1952
11. Psychology	C. W. Valentine	1952
12. Psychology	Karn	1955
13. Psychology	R. S. Woodworth	Ed. 1952
14. Psychological Studies in Ras	Dr. Rakesh Gupta	First
15. Psychological Types	C. G. Jung	1953
16. Style	F. L. Lucas	1955
17. The Appreciation of Poetry	E. G. Moll	1933
18. The Development of Personality	C. G. Jung	First

19. The Energies of Man	W. Mc. Dougall	1950
20. The Future Poetry	Sri AurbinJo	First
21. The Unconscious	Morton Prince	1929

पत्र-पत्रिकाएँ

- आनन्द मार्ग पत्रिका, अक्तूबर, १९७२ अंक।
- धर्मयुग।
- परिशोध (पंजाब विश्वविद्यालय)।
- साप्ताहिक हिन्दुस्तान।
- साहित्य-सन्देश।